अमर बलिदानी पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा

The Autobiography of Pandit Ram Prasad 'Bismil'

(दिसंबर 1927 ईस्वी में गोरखपुर जेल में लिखी गई)

बिस्मिल की कुछ कविताएँ

Constituion of Hindustan Republic Association



Introduction in English

Ramprasad Bismil was one of the great revolutionary heroes of India who sacrificed their lives for the sake of freedom of Mother India. He was born in 1897 at Shahjahanpur, Uttar Pradesh. His father, Muralidhar, was an employee of Shahjahanpur Municipality. Ramaprasad learnt Hindi from his father and was sent to learn Urdu from a Moulvi. He also joined an English medium school despite his father's disapproval. Bismil knew several languages including Hindi, English, Urdu, Sanskrit and Bengali.

During his school days, Ramaprasad came into the influence of Arya Samaj which, in those days, used to be an inspirational force for thousands of patriots like Bhagat Singh, Lajpat Rai, Chandrasekhar Azad etc. Ramprasad was also very talented in writing poetry and made Hindi translations of some Bengali books. Some of this writings include The Bolshevik Programme, A Sally of the Mind, Swadeshi Rang, and Catherine. All of his poems have the intense patriotic feeling.

Ramprasad and his associates raised a revolutionary organization for the sole purpose of fighting againt the British imperialism in India. His revolutionary team's members consisted of great freedom fighters like Ashfaqulla Khan, Chandrasekhar Azad, Bhagawati Charan Verma, Rajguru and many more. For running the organization and for buying small weapons, they were badly in need of funds which were difficult to be raised through charity etc. from public. Hence, they decided to loot the cash from the govt. treasury. On the evening of 9th August 1925, the 8-Down train was passing through Kakori near Lucknow, when Ramprasad and his nine revolutionary followers pulled the chain and stopped it. The cash from the Guard's carriage was looted.

Passengers had been told not to be afraid as the purpose was not to harm them. With the exception of one innocent passenger who was killed by an accidental shot, there was no bloodshed. This extremely well-planned dacoity, which is known as 'Kakori Conspiracy', jolted the British Government in India. After a month of detailed preliminary inquiries and elaborate preparations, the government cast its net wide for the revolutionaries. Arrest warrants were issued not only against the ten participants but also against other leaders of the Hindustan Republican Army. With the exception of Chandrashekhar Azad, all participants were caught. The case went on for over a year and a half, and death sentences were awarded to Ramaprasad, Ashfaqullah, Roshan Singh and Rajendra Lahiri.

Ramprasad 'Bismil' was hanged to death in Gorakhpur jail on 19 December 1927. He started writing his autobiography in his prison-cell at Gorakhpur jail and concluded it just three days prior to being hanged. On 18 December 1927, his mother came to meet him in jail, along with his close friend, Shiv Verma. Ramprasad hid the hand-written manuscript inside the tiffin which his mother had brought, and handed it over to Shiv Verma, who was successful in bringing the manuscript outside jail premises. These pages were later got printed in the shape of a book by Bhagvaticharan Verma. Soon thereafter, the printed copies of the book were confiscated and the publication banned by the Government. After India's Independence in 1947, this autobiography of Ramprasad Bismil was published by some Arya Samaj outfits, including at Haryana Sahitya Sansthan, Gurukul Jhajjar, Haryana. Today, some of Bismil's personal belongings, including a blanket which he used in jail, are kept at Haryana Archaeological Museum, Gurukul Jhajjar (Haryana).

The autobiography of Ramprasad Bismil has been and will remain a source of inspiration for youngmen of India. The text of this biography is reproduced below.

Ramprasad ('Bismil' was his pen-name) was not only a revolutionary, but was a great poet also. No other patriotic song, with the exception of Bankim Chandra's 'Vande Matram', induced so many youngmen to lay down their lives for the country than Ramprasad Bismil's "Sarfaroshi ki Tamanna" (सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है). The Text of this long poem is also reproduced at the end of the autobiography.

प्रथम खंड

आत्म-चरित्र

तोमरधार में चम्बल नदी के किनारे पर दो ग्राम आबाद हैं, जो ग्वालियर राज्य में बहुत ही प्रसिद्ध हैं, क्योंकि इन ग्रामों के निवासी बड़े उद्दण्ड हैं। वे राज्य की सत्ता की कोई चिन्ता नहीं करते। जमीदारों का यह हाल है कि जिस साल उनके मन में आता है राज्य को भूमि-कर देते हैं और जिस साल उनकी इच्छा नहीं होती, मालगुजारी देने से साफ इन्कार कर जाते हैं। यदि तहसीलदार या कोई और राज्य का अधिकारी आता है तो ये जमींदार बीहड़ में चले जाते हैं और महीनों बीहड़ों में ही पड़े रहते हैं। उनके पशु भी वहीं रहते हैं और भोजनादि भी बीहड़ों में ही होता है। घर पर कोई ऐसा मूल्यवान पदार्थ नहीं छोड़ते जिसे नीलाम करके मालगुजारी वसूल की जा सके। एक जमींदार के सम्बंध में कथा प्रचलित है कि मालगुजारी न देने के कारण ही उनको कुछ भूमि माफी में मिल गई। पहले तो कई साल तक भागे रहे। एक बार धोखे से पकड़ लिये गए तो तहसील के अधिकारियों ने उन्हें बहुत सताया। कई दिन तक बिना खाना-पानी के बँधा रहने दिया। अन्त में जलाने की धमकी दे, पैरों पर सूखी घास डालकर आग लगवा दी। किन्तु उन जमींदार महोदय ने भूमि-कर देना स्वीकार न किया और यही उत्तर दिया कि ग्वालियर महाराज के कोष में मेरे कर न देने से ही घाटा न पड़ जायेगा। संसार क्या जानेगा कि अमुक व्यक्ति उद्दंडता के कारण ही अपना समय व्यतीत करता है। राज्य को लिखा गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उतनी भूमि उन महाशय को माफी में दे दी गई। इसी प्रकार एक

समय इन ग्रामों के निवासियों को एक अद्भुत खेल सूझा। उन्होंने महाराज के रिसाले के साठ ऊँट चुराकर बीहड़ों में छिपा दिए। राज्य को लिखा गया; जिस पर राज्य की ओर से आज्ञा हुई कि दोनों ग्राम तोप लगाकर उड़वा दिए जाएँ। न जाने किस प्रकार समझाने-बुझाने से वे ऊँट वापस किए गए और अधिकारियों को समझाया गया कि इतने बड़े राज्य में थोड़े से वीर लोगों का निवास है, इनका विध्वंस न करना ही उचित होगा। तब तोपें लौटाईं गईं और ग्राम उड़ाये जाने से बचे। ये लोग अब राज्य-निवासियों को तो अधिक नहीं सताते, किन्तु बहुधा अंग्रेजी राज्य में आकर उपद्रव कर जाते हैं और अमीरों के मकानों पर छापा मारकर रात-ही-रात बीहड़ में दाखिल हो जाते हैं। बीहड़ में पहुँच जाने पर पुलिस या फौज कोई भी उनका बाल बाँका नहीं कर सकती। ये दोनों ग्राम अंग्रेजी राज्य की सीमा से लगभग पन्द्रह मील की दूरी पर चम्बल नदी के तट पर हैं। यहीं के एक प्रसिद्ध वंश में मेरे पितामह श्री नारायणलाल जी का जन्म हुआ था। वह कौटुम्बिक कलह और अपनी भाभी के असहनीय दुर्व्यवहार के कारण मजबूर हो अपनी जन्मभूमि छोड़ इधर-उधर भटकते रहे। अन्त में अपनी धर्मपत्नी और दो पुत्रों के साथ वह शाहजहाँपुर पहुँचे। उनके इन्हीं दो पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र श्री मुरलीधर जी मेरे पिता हैं। उस समय इनकी अवस्था आठ वर्ष और उनके छोटे पुत्र - मेरे चाचा (श्री कल्याणमल) की उम्र छः वर्ष की थी। इस समय यहां दुर्भिक्ष का भयंकर प्रकोप था।

अनेक प्रयत्न करने के पश्चात् शाहाजहाँपुर में एक अत्तार महोदय की दुकान पर श्रीयुत् नारायणलाल जी को तीन रुपये मासिक वेतन की नौकरी मिली। तीन रुपये मासिक में दुर्भिक्ष के समय चार प्राणियों का किस प्रकार निर्वाह हो सकता था ? दादीजी ने बहुत प्रयत्न किया कि अपने आप केवल एक समय आधे पेट भोजन करके बच्चों का पेट पाला जाय, किन्तु फिर भी निर्वाह न हो सका। बाजरा, कुकनी, सामा, ज्वार इत्यादि खाकर दिन काटने चाहे, किन्तु फिर भी गुजारा न हुआ तब आधा बथुआ, चना या कोई दूसरा साग, जो सब से सस्ता हो उसको लेकर, सबसे सस्ता अनाज उसमें आधा मिलाकर थोड़ा-सा नमक डालकर उसे स्वयं खाती, लड़कों को चना या जौ की रोटी देतीं और इसी प्रकार दादाजी भी समय व्यतीत करते थे। बड़ी कठिनता से आधे पेट खाकर दिन तो कट जाता, किन्तु पेट में घोटूँ दबाकर रात काटना कठिन हो जाता। यह तो भोजन की अवस्था थी, वस्त्र तथा रहने के स्थान का किराया कहाँ से आता ? दादाजी ने चाहा कि भले घरों में मजदूरी ही मिल जाए, किन्तु अनजान व्यक्ति का, जिसकी भाषा भी अपने देश की भाषा से न मिलती हो, भले घरों में सहसा कौन विश्वास कर सकता था ? कोई मजदूरी पर अपना अनाज भी पीसने को न देता था ! डर था कि दुर्भिक्ष का समय है, खा लेगी। बहुत प्रयत्न करने के बाद एक-दो महिलाएं अपने घर पर अनाज पिसवाने पर राजी हुईं, किन्तु पुरानी काम करने वालियों को कैसे जवाब दें ? इसी प्रकार अड़चनों के बाद पाँच-सात सेर

अनाज पीसने को मिल जाता, जिसकी पिसाई उस समय एक पैसा प्रति पंसेरी थी। बड़े कठिनता से आधे पेट एक समय भोजन करके तीन-चार घण्टों तक पीसकर एक पैसा या डेढ़ पैसा मिलता। फिर घर पर आकर बच्चों के लिए भोजन तैयार करना पड़ता। तो-तीन वर्ष तक यही अवस्था रही। बहुधा दादाजी देश को लौट चलने का विचार प्रकट करते, किन्तु दादीजी का यही उत्तर होता कि जिनके कारण देश छूटा, धन-सामग्री सब नष्ट हुई और ये दिन देखने पड़े अब उन्हीं के पैरों में सिर रखकर दासत्व स्वीकार करने से इसी प्रकार प्राण दे देना कहीं श्रेष्ठ है, ये दिन सदैव न रहेंगे। सब प्रकार के संकट सहे किन्तु दादीजी देश को लौटकर न गई।

चार-पांच वर्ष में जब कुछ सज्जन परिचित हो गए और जान लिया कि स्त्री भले घर की है, कुसमय पड़ने से दीन-दशा को प्राप्त हुई है, तब बहुत सी महिलाएं विश्वास करने लगीं। दुर्भिक्ष भी दूर हो गया था। कभी-कभी किसी सज्जन के यहाँ से कुछ दान मिल जाता, कोई ब्राह्मण-भोजन करा देता। इसी प्रकार समय व्यतीत होने लगा। कई महानुभावों ने, जिनके कोई सन्तान न थी और धनादि पर्याप्त था, दादाजी को अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये कि वह अपना एक लड़का उन्हें दे दें और जितना धन मांगे उनकी भेंट किया जाय। किन्तु दादीजी आदर्श माता थी, उन्होंने इस प्रकार के प्रलोभनों की किंचित-मात्र भी परवाह न की और अपने बच्चों का किसी-न-किसी प्रकार पालन करती रही।

मेहनत-मजदूरी तथा ब्राह्मण-वृत्ति द्वारा कुछ धन एकत्र हुआ। कुछ महानुभावों के कहने से पिताजी के किसी पाठशाला में शिक्षा पाने का प्रबन्ध कर दिया गया। श्री दादाजी ने भी कुछ प्रयत्न किया, उनका वेतन भी बढ़ गया और वह सात रुपये मासिक पाने लगे। इसके बाद उन्होंने नौकरी छोड़, पैसे तथा दुअन्नी, चवन्नी इत्यादि बेचने की दुकान की। पाँच-सात आने रोज पैदा होने लगे। जो दुर्दिन आये थे, प्रयत्न तथा साहस से दूर होने लगे। इसका सब श्रेय श्री दादी जी को ही है। जिस साहस तथा धैर्य से उन्होंने काम लिया वह वास्तव में किसी दैवी शक्ति की सहायता ही कही जाएगी। अन्यथा एक अशिक्षित ग्रामीण महिला की क्या सामर्थ्य है कि वह नितान्त अपरिचित स्थान में जाकर मेहनत मजदूरी करके अपना तथा अपने बच्चों का पेट पालन करते हुए उनको शिक्षित बनाये और फिर ऐसी परिस्थितियों में जब कि उसने अभी अपने जीवन में घर से बाहर पैर न रखा हो और जो ऐसे कट्टर देश की रहने वाली हो कि जहाँ पर प्रत्येक हिन्दू प्रथा का पूर्णतया पालन किया जाता हो, जहाँ के निवासी अपनी प्रथाओं की रक्षा के लिए प्राणों की किंचित-मात्र भी चिन्ता न करते हों। किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य की कुलवधू का क्या साहस, जो डेढ़ हाथ का घूंघट निकाले बिना एक घर से

दूसरे घर पर चली जाए। शूद्र जाति की वधुओं के लिए भी यही नियम है कि वे रास्ते में बिना घूंघट निकाले न जाएँ। शूद्रों का पहनावा ही अलग है, ताकि उन्हें देखकर ही दूर से पहचान लिया जाए कि यह किसी नीच जाति की स्त्री है। ये प्रथाएँ इतनी प्रचलित हैं कि उन्होंने अत्याचार का रूप धारण कर लिया है। एक समय किसी चमार की वधू, जो अंग्रेजी राज्य से विवाह करके गई थी, कुल-प्रथानुसार जमींदार के घर पैर छूने के लिए गई। वह पैरों में बिछुवे (नुपूर) पहने हुए थी और सब पहनावा चमारों का पहने थी। जमींदार महोदय की निगाह उसके पैरों पर पड़ी। पूछने पर मालूम हुआ कि चमार की बहू है। जमींदार साहब जूता पहनकर आए और उसके पैरों पर खड़े होकर इस जोर से दबाया कि उसकी अंगुलियाँ कट गईं। उन्होंने कहा कि यदि चमारों की बहुऐं बिछुवा पहनेंगीं तो ऊँची जाति के घर की स्त्रियां क्या पहनेंगीं ? ये लोग नितान्त अशिक्षित तथा मूर्ख हैं किन्तु जाति-अभिमान में चूर रहते हैं। गरीब-से-गरीब अशिक्षित ब्राह्मण या क्षत्रिय, चाहे वह किसी आयु का हो, यदि शूद्र जाति की बस्ती में से गुजरे तो चाहे कितना ही धनी या वृद्ध कोई शूद्र क्यों न हो, उसको उठकर पालागन या जुहार करनी ही पड़ेगी। यदि ऐसा न करे तो उसी समय वह ब्राह्मण या क्षत्रिय उसे जूतों से मार सकता है और सब उस शूद्र का ही दोष बताकर उसका तिरस्कार करेंगे ! यदि किसी कन्या या बहू पर व्यभिचारिणी होने का सन्देह किया जाए तो उसे बिना किसी विचार के मारकर चम्बल में प्रवाहित कर दिया जाता है। इसी प्रकार यदि किसी विधवा पर व्यभिचार या किसी प्रकार आचरण-भ्रष्ठ होने का दोष लगाया जाए तो चाहे वह गर्भवती ही क्यों न हो, उसे तुरन्त ही काटकर चम्बल में पहुंचा दें और किसी को कानों-कान भी खबर न होने दें। वहाँ के मनुष्य भी सदाचारी होते हैं। सबकी बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझते हैं। स्त्रियों की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए प्राण देने में भी सभी नहीं हिचकिचाते। इस प्रकार के देश में विवाहित होकर सब प्रकार की प्रथाओं को देखते हुए भी इतना साहस करना यह दादी जी का ही काम था।

परमात्मा की दया से दुर्दिन समाप्त हुए। पिताजी कुछ शिक्षा पा गए और एक मकान भी श्री दादाजी ने खरीद लिया। दरवाजे-दरवाजे भटकने वाले कुटुम्ब को शान्तिपूर्वक बैठने का स्थान मिल गया और फिर श्री पिताजी के विवाह करने का विचार हुआ। दादीजी, दादाजी तथा पिताजी के साथ अपने मायके गईं। वहीं पिताजी का विवाह कर दिया। वहाँ दो चार मास रहकर सब लोग वधू की विदा कराके साथ लिवा लाए।

गार्हस्थ्य जीवन

विवाह हो जाने के पश्चात पिताजी म्युनिसिपैलिटी में पन्द्रह रुपये मासिक वेतन पर नौकर हो गए। उन्होंने कोई बड़ी शिक्षा प्राप्त न की थी। पिताजी को यह नौकरी पसन्द न आई। उन्होंने एक-दो साल के बाद नौकरी

छोड़कर स्वतन्त्र व्यवसाय आरम्भ करने का प्रयत्न किया और कचहरी में सरकारी स्टाम्प बेचने लगे। उनके जीवन का अधिक भाग इसी व्यवसाय में व्यतीत हुआ। साधारण श्रेणी के गृहस्थ बनकर उन्होंने इसी व्यवसाय द्वारा अपनी सन्तानों को शिक्षा दी, अपने कुटुम्ब का पालन किया और अपने मुहल्ले के गणमान्य व्यक्तियों में गिने जाने लगे। वह रुपये का लेन-देन भी करते थे। उन्होंने तीन बैलगाड़ियां भी बनाईं थीं, जो किराये पर चला करतीं थीं। पिताजी को व्यायाम से प्रेम था। उनका शरीर बड़ा सुदृढ़ व सुडौल था। वह नियम पूर्वक अखाड़े में कुश्ती लड़ा करते थे।

पिताजी के गृह में एक पुत्र उत्पन्न हुआ, किन्तु वह मर गया। उसके एक साल बाद लेखक (श्री रामप्रसाद) ने ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष 11 सम्वत् 1954 विक्रमी को जन्म लिया। बड़े प्रयत्नों से मानता मानकर अनेक गंडे, ताबीज तथा कवचों द्वारा श्री दादाजी ने इस शरीर की रक्षा के लिए प्रयत्न किया। स्यात् बालकों का रोग गृह में प्रवेश कर गया था। अतःएव जन्म लेने के एक या दो मास पश्चात् ही मेरे शरीर की अवस्था भी पहले बालक जैसी होने लगी। किसी ने बताया कि सफेद खरगोश को मेरे शरीर पर घुमाकर जमीन पर छोड़ दिया जाय, यदि बीमारी होगी तो खरगोश तुरन्त मर जायेगा। कहते हैं हुआ भी ऐसा ही। एक सफेद खरगोश मेरे शरीर पर से उतारकर जैसे ही जमीन पर छोड़ा गया, वैसे ही उसने तीन-चार चक्कर काटे और मर गया। मेरे विचार में किसी अंश में यह सम्भव भी है, क्योंकि औषधि तीन प्रकार की होती हैं - (1) दैविक (2) मानुषिक, (3) पैशाचिक। पैशाचिक औषधियों में अनेक प्रकार के पशु या पक्षियों के मांस अथवा रुधिर का व्यवहार होता है, जिनका उपयोग वैद्यक के ग्रन्थों में पाया जाता है। इसमें से एक प्रयोग बड़ा ही कौतुहलोत्पादक तथा आश्चर्यजनक यह है कि जिस बच्चे को जभोखे (सूखा) की बीमारी हो गई हो, यदि उसके सामने चमगादड़ चीरकर लाया जाए तो एक दो मास का बालक चमगादड़ को पकड़कर उसका खून चूस लेगा और बीमारी जाती रहेगी। यह बड़ी उपयोगी औषधि है और एक महात्मा की बतलाई हुई है।

जब मैं सात वर्ष का हुआ तो पिताजी ने स्वयं ही मुझे हिन्दी अक्षरों का बोध कराया और एक मौलवी साहब के मकतब में उर्दू पढ़ने के लिए भेज दिया। मुझे भली-भांति स्मरण है कि पिताजी अखाड़े में कुश्ती लड़ने जाते थे और अपने से बलिष्ठ तथा शरीर से डेढ़ गुने पट्ठे को पटक देते थे, कुछ दिनों बाद पिताजी का एक बंगाली (श्री चटर्जी) महाशय से प्रेम हो गया। चटर्जी महाशय की अंग्रेजी दवा की दुकान थी। वह बड़े भारी नशेबाज थे। एक समय में आधा छटांक चरस की चिलम उड़ाया करते थे। उन्हीं की संगति में पिताजी ने भी चरस पीना सीख लिया, जिसके कारण उनका शरीर नितान्त नष्ट हो गया। दस वर्ष में ही सम्पूर्ण शरीर सूखकर हड्डियां

निकल आईं। चटर्जी महाशय सुरापान भी करने लगे। अतःएव उनका कलेजा बढ़ गया और उसी से उनका शरीरांत हो गया। मेरे बहुत-कुछ समझाने पर पिताजी ने चरस पीने की आदत को छोड़ा, किन्तु बहुत दिनों के बाद।

मेरे बाद पांच बहनों और तीन भाईयों का जन्म हुआ। दादीजी ने बहुत कहा कि कुल की प्रथा के अनुसार कन्याओं को मार डाला जाए, किन्तु माताजी ने इसका विरोध किया और कन्याओं के प्राणों की रक्षा की। मेरे कुल में यह पहला ही समय था कि कन्याओं का पोषण हुआ। पर इनमें से दो बहनों और दो भाईयों का देहान्त हो गया। शेष एक भाई, जो इस समय (1927 ई०) दस वर्ष का है और तीन बहनें बचीं। माताजी के प्रयत्न से तीनों बहनों को अच्छी शिक्षा दी गई और उनके विवाह बड़ी धूमधाम से किए गए। इसके पूर्व हमारे कुल की कन्याएं किसी को नहीं ब्याही गईं, क्योंकि वे जीवित ही नहीं रखी जातीं थीं।

दादाजी बड़ी सरल प्रकृति के मनुष्य थे। जब तक वे जीवित रहे, पैसे बेचने का ही व्यवसाय करते रहे। उनको गाय पालने का बहुत बड़ा शौक था। स्वयं ग्वालियर जाकर बड़ी-बड़ी गायें खरीद लाते थे। वहां की गायें काफी दूध देती हैं। अच्छी गाय दस या पन्द्रह सेर दूध देती है। ये गायें बड़ी सीधी भी होती हैं। दूध दोहन करते समय उनकी टांगें बांधने की आवश्यकता नहीं होती और जब जिसका जी चाहे बिना बच्चे के दूध दोहन कर सकता है। बचपन में मैं बहुधा जाकर गाय के थन में मुँह लगाकर दूध पिया करता था। वास्तव में वहां की गायें दर्शनीय होती हैं।

दादाजी मुझे खूब दूध पिलाया करते थे। उन्हें अट्ठारह गोटी (बघिया बग्घा) खेलने का बड़ा शौक था। सायंकाल के समय नित्य शिव-मन्दिर में जाकर दो घण्टे तक परमात्मा का भजन किया करते थे। उनका लगभग पचपन वर्ष की आयु में स्वर्गारोहण हुआ।

बाल्यकाल से ही पिताजी मेरी शिक्षा का अधिक ध्यान रखते थे और जरा-सी भूल करने पर बहुत पीटते थे। मुझे अब भी भली-भांति स्मरण है कि जब मैं नागरी के अक्षर लिखना सीख रहा था तो मुझे 'उ' लिखना न आया। मैने बहुत प्रयत्न किया। पर जब पिताजी कचहरी चले गए तो मैं भी खेलने चला गया। पिताजी ने कचहरी से आकर मुझ से 'उ' लिखवाया तो मैं लिख न सका। उन्हें मालूम हो गया कि मैं खेलने चला गया था,

इस पर उन्होंने मुझे बन्दूक के लोहे के गज से इतना पीटा कि गज टेढ़ा पड़ गया। भागकर दादीजी के पास चला गया, तब बचा। मैं छोटेपन से ही बहुत उद्दण्ड था। पिताजी के पर्याप्त शासन रखने पर भी बहुत उद्दण्डता करता था। एक समय किसी के बाग में जाकर आड़ू के वृक्षों में से सब आड़ू तोड़ डाले। माली पीछे दौड़ा, किन्तु मैं उनके हाथ न आया। माली ने सब आड़ू पिताजी के सामने ला रखे। उस दिन पिताजी ने मुझे इतना पीटा कि मैं दो दिन तक उठ न सका। इसी प्रकार खूब पिटता था, किन्तु उद्दण्डता अवश्य करता था। शायद उस बचपन की मार से ही यह शरीर बहुत कठोर तथा सहनशील बन गया।

मेरी कुमारावस्था

जब मैं उर्दू का चौथा दर्जा पास करके पाँचवें में आया उस समय मेरी अवस्था लगभग चौदह वर्ष की होगी। इसी बीच मुझे पिताजी के सन्दूक के रुपये-पैसे चुराने की आदत पड़ गई थी। इन पैसों से उपन्यास खरीदकर खूब पढ़ता। पुस्तक-विक्रेता महाशय पिताजी के जान-पहचान के थे। उन्होंने पिताजी से मेरी शिकायत की। अब मेरी कुछ जाँच होने लगी। मैने उन महाशय के यहाँ से किताबें खरीदना ही छोड़ दिया। मुझ में दो-एक खराब आदतें भी पड़ गईं। मैं सिगरेट पीने लगा। कभी-कभी भंग भी जमा लेता था। कुमारावस्था में स्वतन्त्रतापूर्वक पैसे हाथ आ जाने से और उर्दू के प्रेम-रसपूर्ण उपन्यासों तथा गजलों की पुस्तकों ने आचरण पर भी अपना कुप्रभाव दिखाना आरम्भ कर दिया। घुन लगना आरम्भ हुआ ही था कि परमात्मा ने बड़ी सहायता की। मैं एक रोज भंग पीकर पिताजी की संदूकची में से रुपए निकालने गया। नशे की हालत में होश ठीक न रहने के कारण संदूकची खटक गई। माताजी को संदेह हुआ। उन्होंने मुझे पकड़ लिया। चाभी पकड़ी गई। मेरे सन्दूक की तलाशी ली गई, बहुत से रुपये निकले और सारा भेद खुल गया। मेरी किताबों में अनेक उपन्यासादि पाए गए जो उसी समय फाड़ डाले गए।

परमात्मा की कृपा से मेरी चोरी पकड़ ली गई नहीं तो दो-चार वर्ष में न दीन का रहता और न दुनियां का। इसके बाद भी मैंने बहुत घातें लगाई, किन्तु पिताजी ने संदूकची का ताला बदल दिया था। मेरी कोई चाल न चल सकी। अब तब कभी मौका मिल जाता तो माताजी के रुपयों पर हाथ फेर देता था। इसी प्रकार की कुटेवों के कारण दो बार उर्दू मिडिल की परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सका, तब मैंने अंग्रेजी पढ़ने की इच्छा प्रकट की। पिताजी मुझे अंग्रेजी पढ़ाना न चाहते थे और किसी व्यवसाय में लगाना चाहते थे, किन्तु माताजी की कृपा से मैं अंग्रेजी पढ़ने भेजा गया। दूसरे वर्ष जब मैं उर्दू मिडिल की परीक्षा में फेल हुआ उसी समय पड़ौस के देव-मन्दिर में, जिसकी दीवार मेरे मकान से मिली थी, एक पुजारीजी आ गए। वह बड़े ही सच्चरित्र व्यक्ति थे। मैं उनके पास उठने-बैठने लगा।

मैं मन्दिर में आने-जाने लगा। कुछ पूजा-पाठ भी सीखने लगा। पुजारी जी के उपदेशों का बड़ा उत्तम प्रभाव हुआ। मैं अपना अधिकतर समय स्तुतिपूजन तथा पढ़ने में व्यतीत करने लगा। पुजारीजी मुझे ब्रह्मचर्य पालन का खूब उपदेश देते थे। वे मेरे पथ-प्रदर्शक बने। मैंने एक दूसरे सज्जन की देखा-देखी व्यायाम करना भी आरम्भ कर दिया। अब तो मुझे भक्ति-मार्ग में कुछ आनन्द प्राप्त होने लगा और चार-पाँच महीने में ही व्यायाम भी खूब करने लगा। मेरी सब बुरी आदतें और कुभावनाएँ जाती रहीं। स्कूलों की छुट्टियाँ समाप्त होने पर मैंने मिशन स्कूल में अंग्रेजी के पाँचवें दर्जे में नाम लिखा लिया। इस समय तक मेरी और सब कुटेवें तो छूट गई थीं, किन्तु सिगरेट पीना न छूटता था। मैं सिगरेट बहुत पीता था। एक दिन में पचास-साठ सिगरेट पी डालता था। मुझे बड़ा दुःख होता था कि मैं इस जीवन में सिगरेट पीने की कुटेव को न छोड़ सकूंगा। स्कूल में भरती होने के थोड़े दिनों बाद ही एक सहपाठी श्रीयुत सुशीलचन्द सेन से कुछ विशेष स्नेह हो गया। उन्हीं की दया के कारण मेरा सिगरेट पीना भी छूट गया।

देव-मन्दिर में स्तुति-पूजा करने की प्रवृत्ति को देखकर श्रीयुत मुंशी इन्द्रजीत जी ने मुझे सन्ध्या करने का उपदेश दिया। मुंशीजी उसी मन्दिर में रहने वाले किसी महाशय के पास आया करते थे। व्यायामादि के कारण मेरा शरीर बड़ा सुगठित हो गया था और रंग निखर आया था। मैंने जानना चाहा कि सन्ध्या क्या वस्तु है। मुंशीजी ने आर्य-समाज सम्बन्धी कुछ उपदेश दिए। इसके बाद मैंने सत्यार्थप्रकाश पढ़ा। इससे तख्ता ही पलट गया। सत्यार्थप्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया। मैंने उसमें उल्लिखित ब्रह्मचर्य के कठिन नियमों का पालन करना आरम्भ कर दिया। मैं कम्बल को तख्त पर बिछाकर सोता और प्रातःकाल चार बजे से ही शैया-त्याग कर देता। स्नान-सन्ध्यादि से निवृत्त हो कर व्यायाम करता, परन्तु मन की वृत्तियां ठीक न होतीं। मैने रात्रि के समय भोजन करना त्याग दिया। केवल थोड़ा सा दूध ही रात को पीने लगा। सहसा ही बुरी आदतों को छोड़ा था, इस कारण कभी-कभी स्वप्नदोष हो जाता। तब किसी सज्जन के कहने से मैंने नमक खाना भी छोड़ दिया। केवल उबालकर साग या दाल से एक समय भोजन करता। मिर्च-खटाई तो छूता भी न था। इस प्रकार पाँच वर्ष तक बराबर नमक न खाया। नमक न खाने से शरीर के दोष दूर हो गए और मेरा स्वास्थ्य दर्शनीय हो गया। सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते थे।

मैं थोड़े दिनों में ही बड़ा कट्टर आर्य-समाजी हो गया। आर्य-समाज के अधिवेशन में जाता-आता। सन्यासी-म्हात्माओं के उपदेशों को बड़ी श्रद्धा से सुनता। जब कोई सन्यासी आर्य-समाज में आता तो उसकी हर प्रकार से सेवा करता, क्योंकि मेरी प्राणायाम सीखने की बड़ी उत्कट इच्छा थी। जिस सन्यासी का नाम सुनता, शहर से

तीन-चार मील उसकी सेवा के लिए जाता, फिर वह सन्यासी चाहे जिस मत का अनुयायी होता । जब मैं अंग्रेजी के सातवें दर्जे में था तब सनातनधर्मी पण्डित जगतप्रसाद जी शाहजहाँपुर पधारे उन्होंने आर्य-समाज का खण्डन करना प्रारम्भ किया । आर्य-समाजियों ने भी उनका विरोध किया और पं० अखिलानंदजी को बुलाकर शास्त्रार्थ कराया । शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ । जनता पर अच्छा प्रभाव हुआ । मेरे कामों को देखकर मुहल्ले वालों ने पिताजी से मेरी शिकायत की । पिताजी ने मुझसे कहा कि आर्य-समाजी हार गए, अब तुम आर्य-समाज से अपना नाम कटा दो । मैंने पिताजी से कहा कि आर्य-समाज के सिद्धान्त सार्वभौम हैं, उन्हें कौन हरा सकता है ? अनेक वाद-विवाद के पश्चात् पिताजी जिद्द पकड़ गए कि आर्य-समाज से त्यागपत्र न देगा तो घर छोड़ दे । मैंने भी विचारा कि पिताजी का क्रोध अधिक बढ़ गया और उन्होंने मुझ पर कोई वस्तु ऐसी दे पटकी कि जिससे बुरा परिणाम हुआ तो अच्छा न होगा । अतएव घर त्याग देना ही उचित है । मैं केवल एक कमीज पहने खड़ा था और पाजामा उतार कर धोती पहन रहा था । पाजामे के नीचे लंगोट बँधा था । पिताजी ने हाथ से धोती छीन ली और कहा 'घर से निकल' । मुझे भी क्रोध आ गया । मैं पिताजी के पैर छूकर गृह त्यागकर चला गया । कहाँ जाऊँ कुछ समझ में न आया । शहर में किसी से जान-पहचान न थी कि जहाँ छिपा रहता । मैं जंगल की ओर भाग गया । एक रात और एक दिन बाग में पेड़ में बैठा रहा । भूख लगने पर खेतों में से हरे चने तोड़ कर खाए, नदी में स्नान किया और जलपान किया । दूसरे दिन सन्ध्या समय पं० अखिलानन्दजी का व्याख्यान आर्य-समाज मन्दिर में था । मैं आर्य-समाज मन्दिर में गया । एक पेड़ के नीचे एकान्त में खड़ा व्याख्यान सुन रहा था कि पिताजी दो मनुष्यों को लिए हुए आ पहुंचे और मैं पकड़ लिया गया । वह उसी समय स्कूल के हैड-मास्टर के पास ले गए । हैड-मास्टर साहब ईसाई थे । मैंने उन्हें सब वृत्तान्त कह सुनाया । उन्होंने पिताजी को समझाया कि समझदार लड़के को मारना-पीटना ठीक नहीं । मुझे भी बहुत कुछ उपदेश दिया । उस दिन से पिताजी ने कभी भी मुझ पर हाथ नहीं उठाया, क्योंकि मेरे घर से निकल जाने पर घर में बड़ा क्षोभ रहा । एक रात एक दिन किसी ने भोजन नहीं किया, सब बड़े दुःखी हुए कि अकेला पुत्र न जाने नदी में डूब गया, रेल से कट गया ! पिताजी के हृदय को भी बड़ा भारी धक्का पहुँचा । उस दिन से वह मेरी प्रत्येक बात सहन कर लेते थे, अधिक विरोध न करते थे । मैं पढ़ने में बड़ा प्रयत्न करता था और अपने दर्जे में प्रथम उत्तीर्ण होता था । यह अवस्था आठवें दर्जे तक रही । जब मैं आठवें दर्जे में था, उसी समय स्वामी श्री सोमदेव जी सरस्वती आर्य-समाज शाहजहांपुर में पधारे । उनके व्याख्यानों का जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव हुआ । कुछ सज्जनों के अनुरोध से स्वामी जी कुछ दिनों के लिए शाहजहाँपुर आर्य-समाज मन्दिर में ठहर गए । स्वामी जी की तबीयत भी कुछ खराब थी, इस कारण शाहजहाँपुर का जलवायु लाभदायक देखकर वहाँ ठहरे थे । मैं उनके पास आया-जाया करता था । प्राणपण से मैंने स्वामीजी महाराज की सेवा की और इसी सेवा के परिणामस्वरूप मेरे जीवन में नवीन परिवर्तन हो गया । मैं रात को दो-तीन बजे तक और दिन-भर उनकी

सेवा-सुश्रुषा में उपस्थित रहता। अनेक प्रकार की औषधियों का प्रयोग किया। कतिपय सज्जनों ने बड़ी सहानुभूति दिखलाई, किन्तु रोग का शमन न हो सका। स्वामीजी मुझे अनेक प्रकार के उपदेश दिया करते थे। उन उपदेशों को मैं श्रवण कर कार्य-रूप में परिणत करने का पूरा प्रयत्न करता। वास्तव में वह मेरे गुरुदेव तथा पथ-प्रदर्शक थे। उनकी शिक्षाओं ने ही मेरे जीवन में आत्मिक बल का संचार किया जिनके सम्बन्ध में मैं पृथक् वर्णन करूंगा।

कुछ नवयुवकों ने मिलकर आर्य-समाज मन्दिर में आर्य कुमार सभा खोली थी, जिनके साप्ताहिक अधिवेशन प्रत्येक शुक्रवार को हुआ करते थे। वहीं पर धार्मिक पुस्तकों का पाठन, विषय विशेष पर निबन्ध-लेखन और पाठन तथा वाद-विवाद होता था। कुमार-सभा से ही मैंने जनता के सम्मुख बोलने का अभ्यास किया। बहुधा कुमार-सभा के नवयुवक मिलकर शहर के मेलों में प्रचारार्थ जाया करते थे। बाजारों में व्याख्यान देकर आर्य-समाज के सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। ऐसा करते-करते मुसलमानों से बुबाहसा होने लगा। अतएव पुलिस ने झगड़े का भय देखकर बाजारों में व्याख्यान देना बन्द करवा दिया। आर्य-समाज के सदस्यों ने कुमार-सभा के प्रयत्न को देखकर उस पर अपना शासन जमाना चाहा, किन्तु कुमार किसी का अनुचित शासन कब मानने वाले थे ! आर्यसमाज के मन्दिर में ताला डाल दिया गया कि कुमार-सभा वाले आर्यसमाज मन्दिर में अधिवेशन न करें। यह भी कहा गया कि यदि वे वहाँ अधिवेशन करेंगे, तो पुलिस को बुलाकर उन्हें मन्दिर से निकलवा दिया जाएगा। कई महीनों तक हम लोग मैदान में अपनी सभा के अधिवेशन करते रहे, किन्तु बालक ही तो थे, कब तक इस प्रकार कार्य चला सकते थे ? कुमार-सभा टूट गई। तब आर्य-समाजियों को शान्ति हुई। कुमार-सभा ने अपने शहर में तो नाम पाया ही था। जब लखनऊ में कांग्रेस हुई तो भारतवर्षीय कुमार सम्मेलन का भी वार्षिक अधिवेशन वहाँ हुआ। उस अवसर पर सबसे अधिक पारितोषिक लाहौर और शाहजहांपुर की कुमार सभाओं ने पाए थे, जिनकी प्रशंसा समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई थी। उन्हीं दिनों मिशन स्कूल के एक विद्यार्थी से मेरा परिचय हुआ। वह कभी-कभी कुमार-सभा में आ जाया करते थे। मेरे भाषण का उन पर अधिक प्रभाव हुआ। वैसे तो वह मेरे मकान के निकट ही रहते थे, किन्तु आपस में कोई मेल न था। बैठने-उठने से आपस में प्रेम बढ़ गया। वह एक ग्राम के निवासी थे। जिस ग्राम में उनका घर था वह ग्राम बड़ा प्रसिद्ध है। बहुत से लोगों के यहां बन्दूक तथा तमंचे भी रहते हैं, जो ग्राम में ही बन जाते हैं। ये सब टोपीदार होते हैं, उन महाशय के पास भी एक नाली का छोटा-सा पिस्तौल था जिसे वह अपने साथ शहर में रखते थे। जब मुझसे अधिक प्रेम बढ़ा तो उन्होंने वह पिस्तौल मुझे रखने के लिए दिया। इस प्रकार के हथियार रखने की मेरी उत्कट इच्छा थी, क्योंकि मेरे पिता के कई शत्रु थे, जिन्होंने अकारण ही पिताजी पर लाठियों का प्रहार किया था। मैं

चाहता था कि यदि पिस्तौल मिल जाए तो मैं पिताजी के शत्रुओं को मार डालूं ! यह एक नाली का पिस्तौल वह महाशय अपने पास रखते तो थे, किन्तु उसको चलाकर न देखा था। मैंने उसे चलाकर देखा तो वह नितान्त बेकार सिद्ध हुआ। मैंने उसे ले जाकर एक कोने में डाल दिया। उस महाशय से स्नेह इतना बढ़ गया कि सांयकाल को मैं अपने घर से खीर की थाली ले जाकर उनके साथ साथ उनके मकान पर ही भोजन किया करता था। वह मेरे साथ श्री स्वामी सोमदेवजी के पास भी जाया करते थे। उनके पिता जब शहर आए तो उनको यह बड़ा बुरा मालूम हुआ। उन्होंने मुझसे अपने लड़के के पास न आने या उसे कहीं साथ न ले जाने के लिए बहुत ताड़ना की और कहा कि यदि मैं उनका कहना न मानूँगा तो वह ग्राम से आदमी लाकर मुझे पिटवाएँगे। मैंने उनके पास आना-जाना त्याग दिया, किन्तु वह महाशय मेरे यहां आते-जाते रहे।

लगभग अट्ठारह वर्ष की उम्र तक मैं रेल पर न चढ़ा था। मैं इतना दृढ़ सत्यवक्ता हो गया था कि एक समय रेल पर चढ़कर तीसरे दर्जे का टिकट खरीदा था, पर इण्टर क्लास में बैठकर दूसरों के साथ-साथ चला गया। इस बात से मुझे बड़ा खेद हुआ। मैने अपने साथियों से अनुरोध किया कि यह तो एक प्रकार की चोरी है। सबको मिलकर इण्टर क्लास का भाड़ा स्टेशन मास्टर को देना चाहिये। एक समय मेरे पिता जी दीवानी में किसी पर दावा करके वकील से कह गए थे कि जो काम हो वह मुझ से करा लें। कुछ आवश्यकता पड़ने पर वकील साहब ने मुझे बुला भेजा और कहा कि मैं पिताजी के हस्ताक्षर वकालतनामें पर कर दूँ। मैंने तुरन्त उत्तर दिया कि यह तो धर्म के विरुद्ध होगा, इस प्रकार का पाप मैं कदापि नहीं कर सकता। वकील साहब ने बहुत कुछ समझाया कि एक सौ रुपए से अधिक का दावा है, मुकदमा खारिज हो जायेगा। किन्तु मुझ पर कुछ भी प्रभाव न हुआ, न मैंने हस्ताक्षर किए। अपने जीवन में सर्व प्रकार से सत्य का आचरण करता था, चाहे कुछ हो जाए, सत्य बात कह देता था।

मेरी माता मेरे धर्म-कार्यों में तथा शिक्षादि में बड़ी सहायता करती थीं। वह प्रातःकाल चार बजे ही मुझे जगा दिया करती थीं। मैं नित्य-प्रति नियमपूर्वक हवन किया करता था। मेरी छोटी बहन का विवाह करने के निमित्त माता जी और पिता जी ग्वालियर गए। मैं और श्री दादाजी शाहजहाँपुर में ही रह गए, क्योंकि मेरी वार्षिक परीक्षा थी। परीक्षा समाप्त करके मैं भी बहन के विवाह में सम्मिलित होने को गया। बारात आ चुकी थी। मुझे ग्राम के बाहर ही मालूम हो गया था कि बारात में वेश्या आई है। मैं घर न गया और न बारात में सम्मिलित हुआ। मैंने विवाह में कोई भी भाग न लिया। मैंने माताजी से थोड़े से रुपए माँगे। माताजी ने मुझे लगभग 125 रुपए दिए, जिनको लेकर मैं ग्वालियर गया। यह अवसर रिवाल्वर खरीदने का अच्छा हाथ लगा

। मैंने सुना था कि रियासत में बड़ी आसानी से हथियार मिल जाते हैं। बड़ी खोज की। टोपीदार बन्दूक तथा पिस्तौल तो मिले थे, किन्तु कारतूसी हथियार का कहीं पता नहीं लगा। पता लगा भी तो एक महाशय ने मुझे ठग लिया और 75 रुपये में टोपीदार पाँच फायर करने वाला एक रिवाल्वर दिया। रियासत की बनी हुई बारूद और थोड़ी सी टोपियाँ दे दीं। मैं इसी को लेकर बड़ा प्रसन्न हुआ। सीधा शाहजहाँपुर पहुँचा। रिवाल्वर को भर कर चलाया तो गोली केवल पन्द्रह या बीस गज पर ही गिरी, क्योंकि बारूद अच्छी न थी। मुझे बड़ा खेद हुआ। माता जी भी जब लौटकर शाहजहाँपुर आई, तो पूछा क्या लाये ? मैंने कुछ कहकर टाल दिया। रुपये सब खर्च हो गए। शायद एक गिन्नी बची थी, सो मैंने माता जी को लौटा दी। मुझे जब किसी बात के लिए धन की आवश्यकता होती तो मैं माता जी से कहता और वह मेरी माँग पूरी कर देती थीं। मेरा स्कूल घर से एक मील दूर था। मैंने माता जी से प्रार्थना की कि मुझे साइकिल ले दें। उन्होंने लगभग एक सौ रुपये दिए। मैंने साइकिल खरीद ली। उस समय मैं अंग्रेजी के नवें दर्जे में आ गया था। कोई धार्मिक या देश सम्बन्धी पुस्तक पढ़ने की इच्छा होती तो माता जी से ही दाम ले जाता। लखनऊ कांग्रेस जाने के लिए मेरी बड़ी इच्छा थी। दादी जी और पिता जी तो बहुत विरोध करते रहे, किन्तु माता जी ने मुझे खर्च दे ही दिया। उसी समय शाहजहाँपुर में सेवा-समिति का आरम्भ हुआ था। मैं बड़े उत्साह के साथ सेवा समिति में सहयोग देता था। पिता जी और दादा जी को मेरे इस प्रकार के कार्य अच्छे न लगते थे, किन्तु माताजी मेरा उत्साह भंग न होने देती थीं। जिस के कारण उन्हें बहुधा पिता जी की डांट-फटकार तथा दंड भी सहना पड़ता था। वास्तव में, मेरी माता जी स्वर्गीय देवी हैं। मुझ में जो कुछ जीवन तथा साहस आया, वह मेरी माता जी तथा गुरुदेव श्री सोमदेव जी की कृपाओं का ही परिणाम है। दादीजी तथा पिता जी मेरे विवाह के लिए बहुत अनुरोध करते; किन्तु माता जी यही कहतीं कि शिक्षा पा चुकने के बाद ही विवाह करना उचित होगा। माता जी के प्रोत्साहन तथा सद्व्यवहार ने मेरे जीवन में वह दृढ़ता प्रदान की कि किसी आपत्ति तथा संकट के आने पर भी मैंने अपने संकल्प को न त्यागा।

मेरी माँ

ग्यारह वर्ष की उम्र में माता जी विवाह कर शाहजहाँपुर आई थीं। उस समय वह नितान्त अशिक्षित एवं ग्रामीण कन्या के सदृश थीं। शाहजहाँपुर आने के थोड़े दिनों बाद श्री दादी जी ने अपनी बहन को बुला लिया। उन्होंने माता जी को गृह-कार्य की शिक्षा दी। थोड़े दिनों में माता जी ने घर के सब काम-काज को समझ लिया और भोजनादि का ठीक-ठीक प्रबन्ध करने लगीं। मेरे जन्म होने के पांच या सात वर्ष बाद उन्होंने हिन्दी पढ़ना आरम्भ किया। पढ़ने का शौक उन्हें खुद ही पैदा हुआ था। मुहल्ले की सखी-सहेली जो घर पर आया करती थी, उन्हीं में जो कोई शिक्षित थीं, माता जी उनसे अक्षर-बोध करतीं। इस प्रकार घर का सब काम कर चुकने के

बाद जो कुछ समय मिल जाता, उस में पढ़ना-लिखना करतीं। परिश्रम के फल से थोड़े दिनों में ही वह देवनागरी पुस्तकों का अवलोकन करने लगीं। मेरी बहनों की छोटी आयु में माता जी ही उन्हें शिक्षा दिया करती थीं। जब मैंने आर्य-समाज में प्रवेश किया, तब से माता जी से खूब वार्तालाप होता। उस समय की अपेक्षा अब उनके विचार भी कुछ उदार हो गए हैं। यदि मुझे ऐसी माता न मिलती तो मैं भी अति साधारण मनुष्यों की भांति संसार चक्र में फंसकर जीवन निर्वाह करता। शिक्षादि के अतिरिक्त क्रान्तिकारी जीवन में भी उन्होंने मेरी वैसी ही सहायता की है, जैसी मेजिनी को उनकी माता ने की थी। यथासमय मैं उन सारी बातों का उल्लेख करूंगा। माताजी का सबसे बड़ा आदेश मेरे लिए यह था कि किसी की प्राण हानि न हो। उनका कहना था कि अपने शत्रु को भी कभी प्राण दण्ड न देना। उनके इस आदेश की पूर्ति के लिए मुझे मजबूरन दो-एक बार अपनी प्रतिज्ञा भंग भी करनी पड़ी थी।

जन्मदात्री जननी ! इस दिशा में तो तुम्हारा ऋण-परिशोध करने के प्रयत्न का अवसर न मिला। इस जन्म में तो क्या यदि अनेक जन्मों में भी सारे जीवन प्रयत्न करूँ तो भी मैं तुम से उऋण नहीं हो सकता। जिस प्रेम तथा दृढ़ता के साथ तुमने इस तुच्छ जीवन का सुधार किया है, वह अवर्णनीय है। मुझे जीवन की प्रत्येक घटना का स्मरण है कि तुम ने किस प्रकार अपनी देव वाणी का उपदेश करके मेरा सुधार किया है। तुम्हारी दया से ही मैं देश-सेवा में संलग्न हो सका। धार्मिक जीवन में भी तुम्हारे ही प्रोत्साहन ने सहायता दी। जो कुछ शिक्षा मैंने ग्रहण की उसका श्रेय तुम्हीं को है। जिस मनोहर रूप से तुम मुझे उपदेश करती थीं, उसका स्मरण कर तुम्हारी मंगलमयी मूर्ति का ध्यान आ जाता है और मस्तक नत हो जाता है। तुम्हें यदि मुझे ताड़ना भी देनी हुई, तो बड़े स्नेह से हर एक बात को समझा दिया। यदि मैंने धृष्तापूर्ण उत्तर दिया तब तुम ने प्रेम भरे शब्दों में यही कहा कि तुम्हें जो अच्छा लगे, वह करो, किन्तु ऐसा करना ठीक नहीं, इसका परिणाम अच्छा न होगा। जीवनदात्री ! तुम ने इस शरीर को जन्म देकर केवल पालन-पोषण ही नहीं किया किन्तु आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति में तुम्हीं मेरी सदैव सहायक रहीं। जन्म-जन्मान्तर परमात्मा ऐसी ही माता दें।

महान से महान संकट में भी तुम ने मुझे अधीर न होने दिया। सदैव अपनी प्रेम भरी वाणी को सुनाते हुए मुझे सान्त्वना देती रहीं। तुम्हारी दया की छाया में मैंने अपने जीवन भर में कोई कष्ट अनुभव न किया। इस संसार में मेरी किसी भी भोग-विलास तथा ऐश्वर्य की इच्छा नहीं। केवल एक तृष्णा है, वह यह कि एक बार श्रद्धापूर्वक तुम्हारे चरणों की सेवा करके अपने जीवन को सफल बना लेता। किन्तु यह इच्छा पूर्ण होती नहीं दिखाई देती और तुम्हें मेरी मृत्यु का दुःख-सम्वाद सुनाया जायेगा। माँ ! मुझे विश्वास है कि तुम यह समझ कर

धैर्य धारण करोगी कि तुम्हारा पुत्र माताओं की माता - भारत माता - की सेवा में अपने जीवन को बलि-वेदी की भेंट कर गया और उसने तुम्हारी कुक्ष को कलंकित न किया, अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा। जब स्वाधीन भारत का इतिहास लिखा जायेगा, तो उसके किसी पृष्ठ पर उज्जवल अक्षरों में तुम्हारा भी नाम लिखा जायेगा। गुरु गोविन्दसिंहजी की धर्मपत्नी ने जब अपने पुत्रों की मृत्यु का सम्वाद सुना था, तो बहुत हर्षित हुई थी और गुरु के नाम पर धर्म रक्षार्थ अपने पुत्रों के बलिदान पर मिठाई बाँटी थी। जन्मदात्री ! वर दो कि अन्तिम समय भी मेरा हृदय किसी प्रकार विचलित न हो और तुम्हारे चरण कमलों को प्रणाम कर मैं परमात्मा का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करूँ।

मेरे गुरुदेव

माता जी के अतिरिक्त जो कुछ जीवन तथा शिक्षा मैंने प्राप्त की वह पूज्यपाद श्री स्वामी सोमदेव जी की कृपा का परिणाम है। आपका नाम श्रीयुत ब्रजलाल चौपड़ा था। पंजाब के लाहौर शहर में आपका जन्म हुआ था। आपका कुटुम्ब प्रसिद्ध था, क्योंकि आपके दादा महाराजा रणजीत सिंह के मंत्रियों में से एक थे। आपके जन्म के कुछ समय पश्चात् आपकी माता का देहान्त हो गया था। आपकी दादी जी ने ही आपका पालन-पोषण किया था। आप अपने पिता की अकेली सन्तान थे। जब आप बढ़े तो चाचियों ने दो-तीन बार आपको जहर देकर मार देने का प्रयत्न किया, ताकि उनके लड़कों को ही जायदाद का अधिकार मिल जाय। आपके चाचा आप पर बड़ा स्नेह रखते थे और शिक्षादि की ओर विशेष ध्यान रखते थे। अपने चचेरे भाईयों के साथ-साथ आप भी अंग्रेजी स्कूल में पढ़ते थे। जब आपने एण्ट्रेन्स की परीक्षा दी तो परीक्षा फल प्रकाशित होने पर आप यूनिवर्सिटी में प्रथम आये और चाचा के लड़के फेल हो गये। घर में बड़ा शोक मनाया गया। दिखाने के लिए भोजन तक नहीं बना। आपकी प्रशंसा तो दूर, किसी ने उस दिन भोजन करने को भी न पूछा और बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से देखा। आपका हृदय पहले से ही घायल था, इस घटना से आपके जीवन को और भी बड़ा आघात पहुँचा। चाचाजी के कहने-सुनने पर कालिज में नाम लिख तो लिया, किन्तु बड़े उदासीन रहने लगे। आपके हृदय में दया बहुत थी। बहुधा अपनी किताबें तथा कपड़े दूसरे सहपाठियों को बाँट दिया करते थे। एक बार चाचाजी से दूसरे लोगों ने कहा कि ब्रजलाल को कपड़े भी आप नहीं बनवा देते, जो वह पुराने फटे-कपड़े पहने फिरता है। चाचाजी को बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि उन्होंने कई जोड़े कपड़े थोड़े दिन पहले ही बनवाये थे। आपके सन्दूकों की तलाशी ली गई। उनमें दो-चार जोड़ी पुराने कपड़े निकले, तब चाचाजी ने पूछा तो मालूम हुआ कि वे नये कपड़े निर्धन विद्यार्थियों को बांट दिया करते हैं। चाचाजी ने कहा कि जब कपड़े बाँटने की इच्छा हो तो कह दिया करो, हम विद्यार्थियों को कपड़े बनवा दिया करेंगे, अपने कपड़े न बांटा करो। आप बहुत निर्धन विद्यार्थियों को अपने घर पर ही भोजन कराया करते थे। चाचियों तथा चचाजात भाईयों के व्यवहार से

आपको बड़ा क्लेश होता था। इसी कारण से आपने विवाह न किया। घरेलू दुर्व्यवहार से दुखी होकर आपने घर त्याग देने का निश्चय कर लिया और एक रात को जब सब सो रहे थे, चुपचाप उठकर घर से निकल गये। कुछ सामान साथ में लिया। बहुत दिनों तक इधर-उधर भटकते रहे। भटकते-भटकते आप हरिद्वार पहुँचे। वहाँ एक सिद्ध योगी से भेंट हुई। श्री ब्रजलाल को जिस वस्तु की इच्छा थी, वह प्राप्त हो गई। उसी स्थान पर रहकर श्री ब्रजलाल ने योग-विद्या की पूर्ण शिक्षा पाई। योगिराज की कृपा से आप 15-20 घण्टे की समाधि लगा लेने लगे। कई वर्ष तक आप वहाँ रहे। इस समय आपको योग का इतना अभ्यास हो गया था कि अपने शरीर को आप इतना हल्का कर लेते थे कि पानी पर पृथ्वी के समान चले जाते थे। अब आपको देश भ्रमण का अध्ययन करने की इच्छा हुई। अनेक स्थानों से भ्रमण करते हुए अध्ययन करते रहे। जर्मनी तथा अमेरिका से बहुत सी पुस्तकें मंगवाई जो शास्त्रों के सम्बन्ध में थीं। जब लाला लाजपतराय को देश-निर्वासन का दण्ड मिला था, उस समय आप लाहौर में थे। वहां आपने एक समाचार-पत्र की सम्पादकी के लिए डिक्लेरेशन दाखिल किया। डिप्टी कमिश्नर उस समय किसी के भी समाचारपत्र के डिक्लेरेशन को स्वीकार न करता था। जब आपसे भेंट हुई तो वह बड़ा प्रभावित हुआ और उसने डिक्लेरेशन मंजूर कर लिया। अखबार का पहला ही अग्रलेख 'अंग्रेजों को चेतावनी' के नाम से निकला। लेख इतना उत्तेजनापूर्ण था कि थोड़ी देर में ही समाचार पत्र की सब प्रतियां बिक गईं और जनता के अनुरोध पर उसी अंक का दूसरा संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। डिप्टी कमिश्नर के पास रिपोर्ट हुई। उसने आपको दर्शनार्थ बुलाया। वह बड़ा क्रुद्ध था। लेख को पढ़कर कांपता, और क्रोध में आकर मेज पर हाथ दे मारता था। किन्तु अंतिम शब्दों को पढ़कर चुप हो जाता। उस लेख के कुछ शब्द यों थे कि "यदि अंग्रेज अब भी न समझेंगे तो वह दिन दूर नहीं कि सन् 1857 के दृश्य फिर दिखाई दें और अंग्रेजों के बच्चों को कत्ल किया जाय, उनकी रमणियों की बेइज्जती हो इत्यादि। किन्तु यह सब स्वप्न है, यह सब स्वप्न है"। इन्हीं शब्दों को पढ़कर डिप्टी कमिश्नर कहता कि हम तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते।

स्वामी सोमदेव भ्रमण करते हुए बम्बई पहुंचे। वहां पर आपके उपदेशों को सुनकर जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। एक व्यक्ति, जो श्रीयुत अबुल कलाम आज़ाद के बड़े भाई थे, आपका व्याख्यान सुनकर मोहित हो गये। वह आपको अपने घर ले गये। इस समय तक आप गेरुआ कपड़ा न पहनते थे। केवल एक लुंगी और कुर्ता पहनते थे, और साफा बांधते थे। श्रीयुत अबुल कलाम आजाद के पूर्वज अरब के निवासी थे। आपके पिता के बम्बई में बहुत से मुरीद थे और कथा की तरह कुछ धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने पर हजारों रुपये चढ़ावे में आया करते थे। वह सज्जन इतने मोहित हो गए कि उन्होंने धार्मिक कथाओं का पाठ करने के लिए जाना ही छोड़ दिया। वह दिन रात आपके पास ही बैठे रहते। जब आप उनसे कहीं जाने को कहते तो वह रोने लगते और कहते कि मैं तो

आपके आत्मिक ज्ञान के उपदेशों पर मोहित हूँ। मुझे संसार में किसी वस्तु की इच्छा नहीं। आपने एक दिन नाराज होकर उनको धीरे से चपत मार दी जिससे वे दिन-भर रोते रहे। उनको घर वालों तथा शिष्यों ने बहुत समझाया किन्तु वह धार्मिक कथा कहने न जाते। यह देखकर उनके मुरीदों को बड़ा क्रोध आया कि हमारे धर्मगुरु एक काफिर के चक्कर में फँस गए हैं। एक सन्ध्या को स्वामी जी अकेले समुद्र के तट पर भ्रमण करने गये थे कि कई मुरीद बन्दूक लेकर स्वामीजी को मार डालने के लिए मकान पर आये। यह समाचार जानकर उन्होंने स्वामी के प्राणों का भय देख स्वामी जी से बम्बई छोड़ देने की प्रार्थना की। प्रातःकाल एक स्टेशन पर स्वामी जी को तार मिला कि आपके प्रेमी श्रीयुत अबुलकलाम आजाद के भाई साहब ने आत्महत्या कर ली। तार पढ़कर आपको बड़ा क्लेश हुआ। जिस समय आपको इन बातों का स्मरण हो आता था तो बड़े दुःखी होते थे। मैं एक सन्ध्या के समय आपके निकट बैठा था, अंधेरा काफी हो गया था। स्वामी जी ने बड़ी गहरी ठंडी सांस ली। मैने चेहरे की ओर देखा तो आंखों से आंसू बह रहे थे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैने कई घण्टे प्रार्थना की, तब आपने उपरोक्त विवरण सुनाया।

अंग्रेजी की योग्यता आपकी बड़ी उच्चकोटि की थी। आपका शास्त्र विषयक ज्ञान बड़ा गम्भीर था। आप बड़े निर्भीक वक्ता थे। आपकी योग्यता को देखकर एक बार मद्रास की कांग्रेस कमेटी ने आपको अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस का प्रतिनिधि चुनकर भेजा था। आगरा की आर्यमित्र-सभा के वार्षिकोत्सव पर आपके व्याख्यानों को श्रवण कर राजा महेन्द्रप्रताप भी बड़े मुग्ध हुए थे। राजा साहब ने आपके पैर छुए और आपको अपनी कोठी पर लिवा ले गए। उस समय से राजा साहब बहुधा आपके उपदेश सुना करते और आपको अपना गुरु मानते थे। इतना साफ निर्भीक बोलने वाला मैंने आज तक नहीं देखा। सन् 1913 ई. में मैंने आपका पहला व्याख्यान शाहजहाँपुर में सुना था। आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर आप पधारे थे। उस समय आप बरेली में निवास करते थे। आपका शरीर बहुत कृश था, क्योंकि आपको एक अजीब रोग हो गया था। आप जब शौच जाते थे, तब आपको खून गिरता था। कभी दो छटांक, कभी चार छटांक और कभी कभी तो एक सेर तक खून गिर जाता था। बवासीर आपको नहीं थी। ऐसा कहते थे कि किसी प्रकार योग की क्रिया बिगड़ जाने से पेट की आंत में कुछ विकार उत्पन्न हो गया। आँत सड़ गई। पेट चिरवाकर आँत कटवानी पड़ी और तभी से यह रोग हो गया था। बड़े-बड़े वैद्य-डाक्टरों की औषधि की किन्तु कुछ लाभ न हुआ। इतने कमजोर होने पर भी जब व्याख्यान देते तब इतने जोर से बोलते कि तीन-चार फर्लांग से आपका व्याख्यान साफ सुनाई देता था। दो-तीन वर्ष तक आपको हर साल आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर बुलाया जाता। सन् 1915 ई० में कतिपय सज्जनों की प्रार्थना पर आप आर्यसमाज मन्दिर शाहजहाँपुर में ही निवास करने लगे। इसी समय से मैंने आपकी सेवा-सुश्रुषा में समय व्यतीत करना आरम्भ कर दिया।

स्वामीजी मुझे धार्मिक तथा राजनैतिक उपदेश देते थे और इसी प्रकार की पुस्तकें पढ़ने का भी आदेश करते थे। राजनीति में भी आपका ज्ञान उच्च कोटि का था। लाला हरदयाल का आपसे बहुत परामर्श होता था। एक बार महात्मा मुंशीराम जी (स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी) को आपने पुलिस के प्रकोप से बचाया। आचार्य रामदेव जी तथा श्रीयुत कृष्णजी से आपका बड़ा स्नेह था। राजनीति में आप मुझे अधिक खुलते न थे। आप मुझसे बहुधा कहा करते थे कि एण्ट्रेंस पास कर लेने के बाद यूरोप यात्रा अवश्य करना। इटली जाकर महात्मा मेजिनी की जन्मभूमि के दर्शन अवश्य करना। सन् 1916 ई० में लाहौर षड्यंत्र का मामला चला। मैं समाचार पत्रों में उसका सब वृत्तांत बड़े चाव से पढ़ा करता था। श्रीयुत भाई परमानन्द से मेरी बड़ी श्रद्धा थी, क्योंकि उनकी लिखी हुई 'तवारीख हिन्द' पढ़कर मेरे हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। लाहौर षड्यंत्र का फैसला अखबारों में छपा। भाई परमानन्द जी को फांसी की सजा पढ़कर मेरे शरीर में आग लग गई। मैंने विचारा कि अंग्रेज बड़े अत्याचारी हैं, इनके राज्य में न्याय नहीं, जो इतने बड़े महानुभाव को फांसी की सजा का हुक्म दे दिया। मैंने प्रतिज्ञा की कि इसका बदला अवश्य लूंगा। जीवन-भर अंग्रेजी राज्य को विध्वंस करने का प्रयत्न करता रहूंगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर चुकने के पश्चात् मैं स्वामीजी के पास आया। सब समाचार सुनाए और अखबार दिया। अखबार पढ़कर स्वामीजी भी बड़े दुखित हुए। तब मैंने अपनी प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में कहा। स्वामीजी कहने लगे कि प्रतिज्ञा करना सरल है, किन्तु उस पर दृढ़ रहना कठिन है। मैंने स्वामीजी को प्रणाम कर उत्तर दिया कि यदि श्रीचरणों की कृपा बनी रहेगी तो प्रतिज्ञा पूर्ति में किसी प्रकार की त्रुटि न करूंगा। उस दिन से स्वामीजी कुछ-कुछ खुले। आप बहुत-सी बातें बताया करते थे। उसी दिन से मेरे क्रान्तिकारी जीवन का सूत्रपात हुआ। यद्यपि आप आर्य-समाज के सिद्धान्तों को सर्वप्रकारेण मानते थे, किन्तु परमहंस रामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ तथा महात्मा कबीरदास के उपदेशों का वर्णन प्रायः किया करते थे।

धार्मिक तथा आत्मिक जीवन में जो दृढ़ता मुझ में उत्पन्न हुई, वह स्वामीजी महाराज के सदुपदेशों का ही परिणाम हैं। आपकी दया से ही मैं ब्रह्मचर्य-पालन में सफल हुआ। आपने मेरे भविष्य-जीवन के सम्बन्ध में जो-जो बातें कहीं थीं, अक्षरशः सत्य हुईं। आप कहा करते थे कि दुःख है कि यह शरीर न रहेगा और तेरे जीवन में बड़ी विचित्र-विचित्र समस्याएँ आयेंगीं, जिनको सुलझाने वाला कोई न मिलेगा। यदि यह शरीर नष्ट न हुआ, जो असम्भव है, तो तेरा जीवन भी संसार में एक आदर्श जीवन होगा। मेरा दुर्भाग्य था कि जब आपके अन्तिम दिन बहुत निकट आ गए, तब आपने मुझे योगाभ्यास सम्बन्धी कुछ क्रियाएं बताने की इच्छा प्रकट की, किन्तु आप इतने दुर्बल हो गए थे कि जरा-सा परिश्रम करने या दस-बीस कदम चलने पर ही आपको बेहोशी आ

जाती थी। आप फिर कभी इस योग्य न हो सके कि कुछ देर बैठ कर कुछ क्रियाऐं मुझे बता सकते। आपने कहा था, मेरा योग भ्रष्ट हो गया। प्रयत्न करूंगा, मरण समय पास रहना, मुझ से पूछ लेना कि मैं कहाँ जन्म लूंगा। सम्भव है कि मैं बता सकूँ। नित्य-प्रति सेर-आध-सेर खून गिर जाने पर भी आप कभी भी क्षुब्ध न होते थे। आपकी आवाज भी कभी कमजोर न हुई। जैसे अद्वितीय आप वक्ता थे, वैसे ही आप लेखक भी थे। आपके कुछ लेख तथा पुस्तकें आपके एक भक्त के पास थीं जो यों ही नष्ट हो गईं। कुछ लेख आपने प्रकाशित भी कराए थे। लगभग 57 वर्ष की उम्र में आपने इहलोक त्याग दिया। इस स्थान पर मैं महात्मा कबीरदास के कुछ अमृत वचनों का उल्लेख करता हूँ जो मुझे बड़े प्रिय तथा शिक्षाप्रद मालूम हुए –

'कबिरा' शरीर सराय है भाड़ा देके बस।

जब भठियारी खुश रहै तब जीवन का रस ॥१॥

'कबिरा' क्षुधा है कूकरी करत भजन में भंग।

याको टुकरा डारि के सुमिरन करो निशंक ॥२॥

नींद निसानी नीच की उठ्ठ 'कबिरा' जाग।

और रसायन त्याग के नाम रसाय चाख ॥३॥

चलना है रहना नहीं चलना बिसवें बीस।

'कबिरा' ऐसे सुहाग पर कौन बँधावे सीस ॥४॥

अपने अपने चोर को सब कोई डारे मारि।

मेरा चोर जो मोहिं मिले सरवस डारूँ वारि ॥५॥

कहे सुने की है नहीं देखा देखी बात।

दूल्हा दुल्हिन मिलि गए सूनी परी बरात ॥६॥

नैनन की करि कोठरी पुतरी पलँग बिछाय।

पलकन की चिक डारि के पीतम लेहु रिझाय ॥७॥

प्रेम पियाला जो पिये सीस दच्छिना देय।

लोभी सीस न दै सके, नाम प्रेम का लेय ॥८॥

सीस उतारे भुँइ धरै तापे राखै पाँव।

दास 'कबिरा' यूं कहे ऐसा होय तो आव ॥९॥

निन्दक नियरे राखिये आँखन कुई छबाय।

बिन पानी साबुन बिना उज्जवल करे सुभाय ॥१०॥

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन

वर्तमान समय में इस देश की कुछ ऐसी दुर्दशा हो रही है कि जितने धनी तथा गणमान्य व्यक्ति हैं उनमें 99 प्रतिशत ऐसे हैं जो अपनी सन्तान-रूपी अमूल्य धन-राशि को अपने नौकर तथा नौकरानियों के हाथ में सौंप देते हैं। उनकी जैसी इच्छा हो, वे उन्हें बनावें ! मध्यम श्रेणी के व्यक्ति भी अपने व्यवसाय तथा नौकरी इत्यादि

में फँसे होने के कारण सन्तान की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सकते। सस्ता कामचलाऊ नौकर या नौकरानी रखते हैं और उन्हीं पर बाल-बच्चों का भार सौंप देते हैं, ये नौकर बच्चों को नष्ट करते हैं। यदि कुछ भगवान की दया हो गई, और बच्चे नौकर-नौकरानियों के हाथ से बच गए तो मुहल्ले की गन्दगी से बचना बड़ा कठिन है। रहे-सहे स्कूल में पहुँचकर पारंगत हो जाते हैं। कालिज पहुँचते-पहुँचते आजकल के नवयुवकों के सोलहों संस्कार हो जाते हैं। कालिज में पहुँचकर ये लोग समाचार-पत्रों में दिए औषधियों के विज्ञापन देख-देखकर दवाइयों को मँगा-मँगाकर धन नष्ट करना आरम्भ करते हैं। 95 प्रतिशत की आँखें खराब हो जाती हैं। कुछ को शारीरिक दुर्बलता तथा कुछ को फैशन के विचार से ऐनक लगाने की बुरी आदत पड़ जाती है शायद ही कोई विद्यार्थी ऐसा हो जिसकी प्रेम-कथा कथायें प्रचलित न हों। ऐसी अजीब-अजीब बातें सुनने में आती हैं कि जिनका उल्लेख करने से भी ग्लानि होती है। यदि कोई विद्यार्थी सच्चरित्र बनने का प्रयास भी करता है और स्कूल या कालिज में उसे कुछ अच्छी शिक्षा भी मिल जाती है, तो परिस्थितियाँ जिनमें उसे निर्वाह करना पड़ता है, उसे सुधरने नहीं देतीं। वे विचारते हैं कि थोड़ा सा जीवन का आनन्द ले लें, यदि कुछ खराबी पैदा हो गई तो दवाई खाकर या पौष्टिक पदार्थों का सेवन करके दूर कर लेंगे। यह उनकी बड़ी भारी भूल है। अंग्रेजी की कहावत है "Only for one and for ever." तात्पर्य यह है कि कि यदि एक समय कोई बात पैदा हुई, मानो सदा के लिए रास्ता खुल गया। दवाईयाँ कोई लाभ नहीं पहुँचाती। अण्डों का जूस, मछली के तेल, मांस आदि पदार्थ भी व्यर्थ सिद्ध होते हैं। सबसे आवश्यक बात चरित्र सुधारना ही होती है। विद्यार्थियों तथा उनके अध्यापकों को उचित है कि वे देश की दुर्दशा पर दया करके अपने चरित्र को सुधारने का प्रयत्न करें। सार में ब्रह्मचर्य ही संसारी शक्तियों का मूल है। बिन ब्रह्मचर्य-व्रत पालन किए मनुष्य-जीवन नितान्त शुष्क तथा नीरस प्रतीत होता है। संसार में जितने बड़े आदमी हैं, उनमें से अधिकतर ब्रह्मचर्य-व्रत के प्रताप से बड़े बने और सैंकड़ों-हजारों वर्ष बाद भी उनका यशगान करके मनुष्य अपने आपको कृतार्थ करते हैं। ब्रह्मचर्य की महिमा यदि जानना हो तो परशुराम, राम, लक्ष्मण, कृष्ण, भीष्म, ईसा, मेजिनी बंदा, रामकृष्ण, दयानन्द तथा राममूर्ति की जीवनियों का अध्ययन करो।

जिन विद्यार्थियों को बाल्यावस्था में कुटेव की बान पड़ जाती है, या जो बुरी संगत में पड़कर अपना आचरण बिगाड़ लेते हैं और फिर अच्छी शिक्षा पाने पर आचरण सुधारने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु सफल मनोरथा नहीं होते, उन्हें भी निराश न होना चाहिए। मनुष्य-जीवन अभ्यासों का एक समूह है। मनुष्य के मन में भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक विचार तथा भाव उत्पन्न होते रहते हैं। क्रिया के बार-बार होने से उसमें ऐच्छिक भाव निकल जाता है और उसमें तात्कालिक प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है। इन तात्कालिक प्रेरक क्रियाओं की, जो पुनरावृत्ति

का फल है, 'अभ्यास' कहते हैं। मानवी चरित्र इन्हीं अभ्यासों द्वारा बनता है। अभ्यास से तात्पर्य आदत, स्वभाव, बान है। अभ्यास अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के होते हैं। यदि हमारे मन में निरन्तर अच्छे विचार उत्पन्न हों, तो उनका फल अच्छे अभ्यास होंगे और यदि बुरे विचारों में लिप्त रहे, तो निश्चय रूपेण अभ्यास बुरे होंगे। मन इच्छाओं का केन्द्र है। उन्हीं की पूर्ति के लिए मनुष्य को प्रयत्न करना पड़ता है। अभ्यासों के बनने में पैतृक संस्कार, अर्थात् माता-पिता के अभ्यासों के अनुकरण ही बच्चों के अभ्यास का सहायक होता है। दूसरे, जैसी परिस्थियों में निवास होता है, वैसे ही अभ्यास भी पड़ते हैं। तीसरे, प्रयत्न से भी अभ्यासों का निर्माण होता है, यह शक्ति इतनी प्रबल हो सकती है कि इसके द्वारा मनुष्य पैतृक संसार तथा परिस्थितियों को भी जीत सकता है। हमारे जीवन का प्रत्येक कार्य अभ्यासों के अधीन है। यदि अभ्यासों द्वारा हमें कार्य में सुगमता न प्रतीत होती, तो हमारा जीवन बड़ा दुखमय प्रतीत होता। लिखने का अभ्यास, वस्त्र पहनना, पठन-पाठन इत्यादि इनके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। यदि हमें प्रारम्भिक समय की भाँति सदैव सावधानी से काम लेना हो, तो कितनी कठिनता प्रतीत हो। इसी प्रकार बालक का खड़ा होना और चलना भी है कि उस समय वह कितना कष्ट अनुभव करता है, किन्तु एक मनुष्य मीलों तक चला जाता है। बहुत लोग तो चलते-चलते नींद भी ले लेते हैं। जैसे जेल में बाहरी दीवार पर घड़ी में चाबी लगाने वाले, जिन्हें बराबर छः घंटे चलना होता है, वे बहुधा चलते-चलते सो लिया करते हैं।

मानसिक भावों को शुद्ध रखते हुए अन्तःकरण को उच्च विचारों में बलपूर्वक संलग्न करने का अभ्यास करने से अवश्य सफलता मिलेगी। प्रत्येक विद्यार्थी या नवयुवक को, जो कि ब्रह्मचर्य के पालन की इच्छा रखता है, उचित है कि अपनी दिनचर्या निश्चित करे। खान-पानादि का विशेष ध्यान रखे। महात्माओं के जीवन-चरित्र तथा चरित्र-संगठन संबन्धी पुस्तकों का अवलोकन करे। प्रेमालाप तथा उपन्यासों से समय नष्ट न करे। खाली समय अकेला न बैठे। जिस समय कोई बुरे विचार उत्पन्न हों, तुरन्त शीतल जलपान कर घूमने लगे या किसी अपने से बड़े के पास जाकर बातचीत करने लगे। अश्लील (इश्कभरी) गजलों, शेरों तथा गानों को न पढ़ें और न सुने। स्त्रियों के दर्शन से बचता रहे। माता तथा बहन से भी एकान्त में न मिले। सुन्दर सहपाठियों या अन्य विद्यार्थियों से स्पर्श तथा आलिंगन की भी आदत न डाले।

विद्यार्थी प्रातःकाल सूर्य उदय होने से एक घण्टा पहले शैया त्यागकर शौचादि से निवृत हो व्यायाम करे या वायु-सेवनार्थ बाहर मैदान में जावे। सूर्य उदय होने के पाँच-दस मिनट पूर्व स्नान से निवृत होकर यथा-विश्वास

परमात्मा का ध्यान करे। सदैव कुऐं के ताजे जल से स्नान करे। यदि कुऐं का जल प्राप्त हो तो जाड़ों में जल को थोड़ा-सा गुनगुना कर लें और गर्मियों में शीतल जल से स्नान करे। स्नान करने के पश्चात् एक खुरखुरे तौलिये या अंगोछे से शरीर खूब मले। उपासना के पश्चात् थोड़ा सा जलपान करे। कोई फल, शुष्क मेवा, दुग्ध अथवा सबसे उत्तम यह है कि गेहूँ का दलिया रंधवाकर यथारुचि मीठा या नमक डालकर खावे। फिर अध्ययन करे और दस बजे से ग्यारह बजे के मध्य में भोजन ले। भोज में मांस, मछली, चरपरे, खट्टे गरिष्ट, बासी तथा उत्तेजक पदार्थों का त्याग करे। प्याज, लहसुन, लाल मिर्च, आम की खटाई और अधिक मसालेदार भोजन कभी न खावे। सात्विक भोजन करे। शुष्क भोजन का भी त्याग करे। जहाँ तक हो सके सब्जी अर्थात् साग अधिक खावे। भोजन खूब चबा-चबा कर किया करे। अधिक गरम या अधिक ठंडा भोजन भी वर्जित है। स्कूल अथवा कालिज से आकर थोड़ा-सा आराम करके एक घण्टा लिखने का काम करके खेलने के लिए जावे। मैदान में थोड़ा घूमे भी। घूमने के लिए चौक बाजार की गन्दी हवा में जाना ठीक नहीं। स्वच्छ वायु का सेवन करें। संध्या समय भी शौच अवश्य जावे। थोड़ा सा ध्यान करके हल्का सा भोजन कर लें। यदि हो सके तो रात्रि के समय केवल दुग्ध पीने का अभ्यास डाल लें या फल खा लिया करें। स्वप्नदोषादि व्याधियां केवल पेट के भारी होने से ही होती हैं। जिस दिन भोजन भली भांति नहीं पचता, उसी दिन विकार हो जाता है या मानसिक भावनाओं की अशुद्धता से निद्रा ठीक न आकर स्वप्नावस्था में वीर्यपात हो जाता है। रात्रि के समय साढ़े दस बजे तक पठन-पाठन करे, पुनः सो जावे। सदैव खुली हवा में सोना चाहिये। बहुत मुलायम और चिकने बिस्तर पर न सोवे। जहाँ तक हो सके, लकड़ी के तख्त पर कम्बल या गाढ़े कपड़े की चद्दर बिछाकर सोवे। अधिक पाठ न करना हो तो 9 या 10 बजे सो जावे। प्रातःकाल 3 या 4 बजे उठकर कुल्ला करके शीतल जलपान करे और शौच से निवृत हो पठन-पाठन करें। सूर्योदय के निकट फिर नित्य की भांति व्यायाम या भ्रमण करें। सब व्यायामों में दण्ड-बैठक सर्वोत्तम है। जहाँ जी चाहा, व्यायाम कर लिया। यदि हो सके तो प्रोफेसर राममूर्ति की विधि से दण्ड-बैठक करें। प्रोफेसर साहब की विधि विद्यार्थियों के लिए लाभदायक है। थोड़े समय में ही पर्याप्त परिश्रम हो जाता है। दण्ड-बैठक के अलावा शीर्षासन और पद्मासन का भी अभ्यास करना चाहिए और अपने कमरे में वीरों और महात्माओं के चित्र रखने चाहियें।

द्वितीय खंड

स्वदेश प्रेम

पूज्यपाद श्रीस्वामी सोमदेव का देहान्त हो जाने के पश्चात् जब से अंग्रेजी के नवें दर्जे में आया, कुछ स्वदेश संबन्धी पुस्तकों का अवलोकन प्रारंभ हुआ । शाहजहाँपुर में सेवा-समिति की नींव पं. श्रीराम वाजपेयी जी ने डाली, उसमें भी बड़े उत्साह से कार्य किया । दूसरों की सेवा का भाव हृदय में उदय हुआ । कुछ समझ में आने लगा कि वास्तव में देशवासी बड़े दुःखी हैं । उसी वर्ष मेरे पड़ौसी तथा मित्र जिनसे मेरा स्नेह अधिक था, एण्ट्रेंस की परीक्षा पास करके कालिज में शिक्षा पाने चले गये । कालिज की स्वतंत्र वायु में हृदय में भी स्वदेश के भाव उत्पन्न हुए । उसी साल लखनऊ में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस का उत्सव हुआ । मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ । कतिपय सज्जनों से भेंट हुई । देश-दशा का कुछ अनुमान हुआ, और निश्चय हुआ कि देश के लिए कोई विशेष कार्य किया जाए । देश में जो कुछ हो रहा है उसकी उत्तरदायी सरकार ही है । भारतवासियों के दुःख तथा दुर्दशा की जिम्मेदारी गवर्नमेंट पर ही है, अतःएव सरकार को पलटने का प्रयत्न करना चाहिए । मैंने भी इसी प्रकार के विचारों में योग दिया । कांग्रेस में महात्मा तिलक के पधारने की खबर थी, इस कारण से गरम दल के अधिक व्यक्ति आए हुए थे । कांग्रेस के सभापति का स्वागत बड़ी धूमधाम से हुआ था । उसके दूसरे दिन लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की स्पेशल गाड़ी आने का समाचार मिला । लखनऊ स्टेशन पर बड़ा जमाव था । स्वागत कारिणी समिति के सदस्यों से मालूम हुआ कि लोकमान्य का स्वागत केवल स्टेशन पर ही किया जायेगा और शहर में सवारी न निकाली जाएगी । जिसका कारण यह था कि स्वागत कारिणी समिति के प्रधान पं. जगतनारायण जी थे । अन्य गणमान्य सदस्यों में पं. गोकरणनाथजी तथा अन्य उदार दल वालों (माडरेटों) की संख्या अधिक थी । माडरेटों को भय था कि यदि लोकमान्य की सवारी शहर में निकाली गई तो कांग्रेस के प्रधान से भी अधिक सम्मान होगा, जिसे वे उचित न समझते थे । अतः उन सबने प्रबन्ध किया कि जैसे ही लोकमान्य तिलक पधारें, उन्हें मोटर में बिठाकर शहर के बाहर बाहर निकाल ले जाएें । इन सब बातों को सुनकर नवयुवकों को बड़ा खेद हुआ । कालिज के एक एम. ए. के विद्यार्थी ने इस प्रबन्ध का विरोध करते हुए कहा कि लोकमान्य का स्वागत अवश्य होना चाहिए । मैंने भी इस विद्यार्थी के कथन में सहयोग दिया । इसी प्रकार कई नवयुवकों ने निश्चय किया कि जैसे ही लोकमान्य स्पेशल से उतरें, उन्हें घेरकर गाड़ी में बिठा लिया जाए और सवारी निकाली जाए । स्पेशल आने पर लोकमान्य सबसे पहले उतरे । स्वागतकारिणी के सदस्यों ने कांग्रेस के स्वयंसेवकों का घेरा बनाकर लोकमान्य को मोटर में जा बिठाया । मैं तथा एक एम.ए. का विद्यार्थी मोटर के आगे लेट गए । सब कुछ समझाया गया, मगर किसी की एक न सुनी । हम लोगों की देखादेखी और

कई नवयुवक भी मोटर के सामने आकर बैठ गए। उस समय मेरे उत्साह का यह हाल था कि मुँह से बात न निकलती थी, केवल रोता था और कहता था, मोटर मेरे ऊपर से निकाल ले जाओ। स्वागतकारिणी के सदस्यों ने कांग्रेस के प्रधान को ले जाने वाली गाड़ी मांगी, उन्होंने स्वीकार न किया। एक नवयुवक ने मोटर का टायर काट दिया। लोकमान्यजी बहुत कुछ समझाते किन्तु वहाँ सुनता कौन ? एक किराये की गाड़ी से घोड़े खोलकर लोकमान्य के पैरों पर सिर रख उन्हें उसमें बिठाया और सबने मिलकर हाथों से गाड़ी खींचनी शुरू की। इस प्रकार लोकमान्य का इस धूमधाम से स्वागत हुआ कि किसी नेता की उतने जोरों से सवारी न निकाली गई। लोगों के उत्साह का यह हाल था कि कहते थे कि एक बार गाड़ी में हाथ लगा लेने दो, जीवन सफल हो जाए। लोकमान्य पर फूलों की जो वर्षा की जाती थी, उसमें से जो फूल नीचे गिर जाते थे उन्हें उठाकर लोग पल्ले में बाँध लेते थे। जिस स्थान पर लोकमान्य के पैर पड़ते, वहां की धूल सबके माथे पर दिखाई देती। कुछ उस धूल को भी अपने रूमाल में बांध लेते थे। इस स्वागत से माडरेटों की बड़ी भद्द हुई।

क्रांतिकारी आन्दोलन

कांग्रेस के अवसर पर लखनऊ से ही मालूम हुआ कि एक गुप्त समिति है, जिसका मुख्य उद्देश्य क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेना है। यहीं से क्रांतिकारी समिति की चर्चा सुनकर कुछ समय बाद मैं भी क्रांतिकारी समिति के कार्य में योग देने लगा। अपने एक मित्र द्वारा भी क्रांतिकारी समिति का सदस्य हो गया। थोड़े ही दिन में मैं कार्यकारिणी का सदस्य बना लिया गया। समिति में धन की बहुत कमी थी, उधर हथियारों की भी जरूरत थी। जब घर वापस आया, तब विचार हुआ कि एक पुस्तक प्रकाशित की जाये और उसमें जो लाभ हो उससे हथियार खरीदे जायें। पुस्तक प्रकाशित करने के लिए धन कहाँ से आये ? विचार करते-करते मुझे एक चाल सूझी। मैंने अपनी माता जी से कहा कि मैं कुछ रोजगार करना चाहता हूँ, उसमें अच्छा लाभ होगा। यदि रुपये दे सकें तो बड़ा अच्छा हो। उन्होंने 200 रुपये दिये। 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली' नामक पुस्तक लिखी जा चुकी थी। प्रकाशित होने का प्रबंध हो गया। थोड़े रुपये की जरूरत और पड़ी, मैंने माता जी से 200 रुपये और ले लिये। पुस्तक की बिक्री हो जाने पर माता जी के रुपये पहले चुका दिये। लगभग 200 रुपये और भी बचे। पुस्तकें अभी बिकने के लिए बहुत बाकी थी। उसी समय 'देशवासियों के नाम संदेश' नामक एक पर्चा छपवाया गया, क्योंकि पं. गेंदालाल जी, ब्रह्मचारी जी के दल सहित ग्वालियर में गिरफ्तार हो गये थे। अब सब विद्यार्थियों ने अधिक उत्साह के साथ काम करने की प्रतिज्ञा की। पर्चे कई जिलों में लगाये गये और बांटे गए। पर्चे तथा 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली' पुस्तक दोनों संयुक्त प्रान्त की सरकार ने जब्त कर लिये।

हथियारों की खरीद अधिकतर लोगों का विचार है कि देशी राज्यों में हथियार (रिवाल्वर, पिस्तौल तथा राइफलें इत्यादि) सब कोई रखता है, और बन्दूक इत्यादि पर लाइसेंस नहीं होता। अतएव इस प्रकार के अस्त्र बड़ी सुगमता से प्राप्त हो सकते हैं। देशी राज्यों में हथियारों पर कोई लाइसेंस नहीं, यह बात बिल्कुल ठीक है, और हर एक को बंदूक इत्यादि रखने की आजादी भी है। किन्तु कारतूसी हथियार बहुत कम लोगों के पास रहते हैं, जिसका करण यह है कि कारतूस या विलायती बारूद खरीदने पर पुलिस में सूचना देनी होती है। राज्य में तो कोई ऐसी दुकान नहीं होती, जिस पर कारतूस या कारतूसी हथियार मिल सकें। यहाँ तक कि विलायती बारूद और बंदूक की टोपी भी नहीं मिलती, क्योंकि ये सब चीजें बाहर से मंगानी पड़ती हैं। जितनी चीजें इस प्रकार की बाहर से मंगायी जाती हैं, उनके लिए रेजिडेंट (गवर्नमेंट का प्रतिनिधि, जो रियासतों में रहता है) की आज्ञा लेनी पड़ती है। बिना रेजिडेण्ट की मंजूरी के हथियारों संबंधी कोई चीज बाहर से रियासत में नहीं आ सकती। इस कारण इस खटखट से बचने के लिए रियासत में ही टोपीदार बंदूकें बनती हैं, और देशी बारूद भी वहीं के लोग शोरा, गन्धक तथा कोयला मिलाकर बना लेते हैं। बन्दूक की टोपी चुरा-छिपाकर मँगा लेते हैं। नहीं तो टोपी के स्थान पर भी मनसल और पुटाश अलग-अलग पीसकर दोनों को मिलाकर उसी से काम चलाते हैं। हथियार रखने की आजादी होने पर भी ग्रामों में किसी एक-दो धनी या जमींदार के यहाँ टोपीदार बंदूक या टोपीदार छोटी पिस्तौल होते हैं, जिनमें ये लोग रियासत की बनी हुई बारूद काम में लाते हैं। यह बारूद बरसात में सील खा जाती है और काम नहीं देती। एक बार मैं अकेला रिवाल्वर खरीदने गया। उस समय समझता था कि हथियारों की दुकान होगी, सीधे जाकर दाम देंगे और रिवाल्वर लेकर चले आयेंगे। प्रत्येक दुकान देखी, कहीं किसी पर बन्दूक इत्यादि का विज्ञापन या कोई दूसरा निशान न पाया। फिर एक ताँगे पर सवार होकर सब शहर घूमा। ताँगे वाले ने पूछा कि क्या चाहिए। मैंने उससे डरते-डरते अपना उद्देश्य कहा। उसी ने दो-तीन दिन घूम-घूमकर एक टोपीदार रिवाल्वर खरीदवा दिया और देशी बनी हुई बारूद एक दुकान से दिला दी। मैं कुछ जानता तो था नहीं, एकदम दो सेर बारूद खरीदी, जो घर पर सन्दूक में रखे-रखे बरसात में सील खाकर पानी पानी हो गई। मुझे बड़ा दुःख हुआ। दूसरी बार जब मैं क्रान्तिकारी समिति का सदस्य हो चुका था, तब दूसरे सहयोगियों की सम्मति से दो सौ रुपये लेकर हथियार खरीदने गया। इस बार मैंने बहुत प्रयत्न किया तो एक कबाड़ी की-सी दुकान पर कुछ तलवारें, खंजर, कटार तथा दो-चार टोपीदार बन्दूकें रखी देखीं। दाम पूछे। इसी प्रकार वार्तालाप करके पूछा कि क्या आप कारतूसी हथियार नहीं बेचते या और कहीं नहीं बिकते? तब उसने सब विवरण सुनाया। उस समय उसके पास टोपीदार एक नली के छोटे-छोटे दो पिस्तौल थे। मैंने वे दोनों खरीद लिये। एक कटार भी खरीदी। उसने वादा किया कि यदि आप फिर आयें तो कुछ कारतूसी हथियार जुटाने का प्रयत्न किया जाये। लालच बुरी बला है, इस कहावत के

अनुसार तथा इसलिए भी कि हम लोगों को कोई दूसरा ऐसा जरिया भी न था, जहाँ से हथियार मिल सकते, मैं कुछ दिनों बाद फिर गया। इस समय उसी ने एक बड़ा सुन्दर कारतूसी रिवाल्वर दिया। कुछ पुराने कारतूस दिये। रिवाल्वर था तो पुराना, किन्तु बड़ा ही उत्तम था। दाम उसके नये के बराबर देने पड़े। अब उसे विश्वास हो गया कि यह हथियारों के खरीदार हैं। उसने प्राणपण से चेष्टा की और कई रिवाल्वर तथा दो-तीन राइफलें जुटाई। उसे भी अच्छा लाभ हो जाता था। प्रत्येक वस्तु पर वह बीस-बीस रुपये मुनाफा ले लेता था। बाज-बाज चीज पर दूना नफा खा लेता था। इसके बाद हमारी संस्था के दो-तीन सदस्य मिलकर गये। दुकानदार ने भी हमारी उत्कट इच्छा को देखकर इधर-उधर से पुराने हथियारों को खरीद करके उनकी मरम्मत की, और नया-सा करके हमारे हाथ बेचना शुरू किया। खूब ठगा। हम लोग कुछ जानते नहीं थे। इस प्रकार अभ्यास करने से कुछ नया पुराना समझने लगे। एक दूसरे सिक्लीगर से भेंट हुई। वह स्वयं कुछ नहीं जानता था, किन्तु उसने वचन दिया कि वह कुछ रईसों से हमारी भेंट करा देगा। उसने एक रईस से मुलाकात कराई जिसके पास एक रिवाल्वर था। रिवाल्वर खरीदने की हमने इच्छा प्रकट की। उस महाशय ने उस रिवाल्वर के डेढ़ सौ रुपये मांगे। रिवाल्वर नया था। बड़ा कहने सुनने पर सौ कारतूस उन्होंने दिये और 155 रुपये लिये। 150 रुपये उन्होंने स्वयं लिए, 5 रुपये कमीशन के तौर पर देने पड़े। रिवाल्वर चमकता हुआ नया था, समझे अधिक दामों का होगा। खरीद लिया। विचार हुआ कि इस प्रकार ठगे जाने से काम न चलेगा। किसी प्रकार कुछ जानने का प्रयत्न किया जाए। बड़ी कौशिश के बाद कलकत्ता, बम्बई से बन्दूक-विक्रेताओं की लिस्टें मांगकर देखीं, देखकर आंखें खुल गईं। जितने रिवाल्वर या बन्दूकें हमने खरीदी थीं, एक को छोड़, सबके दुगने दाम दिये थे। 155 रुपये के रिवाल्वर के दाम केवल 30 रुपये ही थे और 10 रुपये के सौ कारतूस इस प्रकार कुल सामान 40 रुपये का था, जिसके बदले 155 रुपये देने पड़े। बड़ा खेद हुआ। करें तो क्या करें ! और कोई दूसरा जरिया भी तो न था।

कुछ समय पश्चात् कारखानों की लिस्टें लेकर तीन-चार सदस्य मिलकर गये। खूब जांच-खोज की। किसी प्रकार रियासत की पुलिस को पता चल गया। एक खुफिया पुलिस वाला मुझे मिला, उसने कई हथियार दिलाने का वायदा किया, और वह पुलिस इंस्पेक्टर के घर ले गया। दैवात् उस समय पुलिस इंस्पेक्टर घर मौजूद न थे। उनके द्वार पर एक पुलिस का सिपाही था, जिसे मैं भली-भाँति जानता था। मुहल्ले में खुफिया पुलिस वालों की आँख बचाकर पूछा कि अमुक घर किसका है ? मालूम हुआ पुलिस इंस्पेक्टर का ! मैं इतस्ततः करके जैसे-जैसे निकल आया और अति शीघ्र अपने टहरने का स्थान बदला। उस समय हम लोगों के पास दो

राइफलें, चार रिवाल्वर तथा दो पिस्तौल खरीदे हुए मौजूद थे। किसी प्रकार उस खुफिया पुलिस वाले को एक कारीगर से जहाँ पर कि हम लोग अपने हथियारों की मरम्मत कराते थे, मालूम हुआ कि हम में से एक व्यक्ति उसी दिन जाने वाला था, उसने चारों ओर स्टेशन पर तार दिलवाए। रेलगाड़ियों की तलाशी ली गई। पर पुलिस की असावधानी के कारण हम बाल-बाल बच गए।

रुपये की चपत बुरी होती है। एक पुलिस सुपरिटेण्डेंट के पास एक राइफल थी। मालूम हुआ वह बेचते हैं। हम लोग पहुँचे। अपने आप को रियासत का रहने वाला बतलाया। उन्होंने निश्चय करने के लिए बहुत से प्रश्न पूछे, क्योंकि हम लोग लड़के तो थे ही। पुलिस सुपरिटेण्डेंट पेंशनयाफ्ता, जाति के मुसलमान थे। हमारी बातों पर उन्हें पूर्ण विश्वास न हुआ। कहा कि अपने थानेदार से लिखा लाओ कि वह तुम्हें जानता है। मैं गया। जिस स्थान का रहने वाला बताया था, वहाँ के थानेदार का नाम मालूम किया, और एक-दो जमींदारों के नाम मालूम करके एक पत्र लिखा कि मैं उस स्थान के रहने वाले अमुक जमींदार का पुत्र हूँ और वे लोग मुझे भली-भाँति जानते हैं। उसी पत्र पर जमींदारों के हिन्दी में और पुलिस दारोगा के अंग्रेजी में हस्ताक्षर बना, पत्र ले जा कर पुलिस कप्तान साहब को दिया। बड़े गौर से देखने के बाद वह बोले, "मैं थानेदार से दर्याफ्त कर लूं। तुम्हें भी थाने चलकर इत्तला देनी होगी कि राइफल खरीद रहे हैं।" हम लोगों ने कहा कि हमने आपके इत्मीनान के लिए इतनी मुसीबत झेली, दस-बारह रुपये खर्च किए, अगर अब भी इत्मीनान न हो तो मजबूरी है। हम पुलिस में न जायेंगे, राइफल के दाम लिस्ट में 150 रुपये लिखे थे, वह 250 रुपये मांगते थे, साथ में दो सौ कारतूस भी दे रहे थे। कारतूस भरने का सामान भी देते थे, जो लगभग 50 रुपये का होता है, इस प्रकार पुरानी राइफल के नई के समान दाम माँगते थे। हम लोग भी 250 रुपये देते थे। पुलिस कप्तान ने भी विचारा कि पूरे दाम मिल रहे हैं। स्वयं वृद्ध हो चुके थे। कोई पुत्र भी न था। अतएव 250 रुपये लेकर राइफल दे दी। पुलिस में कुछ पूछने न गए। उन्हीं दिनों राज्य के एक उच्च पदाधिकारी के नौकर से मिलकर उनके यहाँ से रिवाल्वर चोरी कराया। जिसके दाम लिस्ट में 75 रुपये थे, उसे 100 रुपये में खरीदा। एक माउजर पिस्तौल भी चोरी कराया, जिसके दाम लिस्ट में उस समय 200 रुपये थे। हमें माउजर पिस्तौल की प्राप्ति की बड़ी उत्कट इच्छा थी। बड़े भारी प्रयत्न के बाद यह माउजर पिस्तौल मिला, जिसका मूल्य 300 रुपये देना पड़ा। कारतूस एक भी न मिला। हमारे पुराने मित्र कबाड़ी महोदय के पास माउजर पिस्तौल के पचास कारतूस पड़े थे। उन्होंने बड़ा काम दिया। हम में से किसी ने भी पहले माउजर पिस्तौल को देखा भी न था। कुछ न समझ सके कि कैसे प्रयोग किया जाता है। बड़े कठिन परिश्रम से उसका प्रयोग समझ में आया।

हमने तीन राइफलें, एक बारह बोर की दोनाली कारतूस बन्दूक, दो टोपीदार बन्दूकें, तीन टोपीदार रिवाल्वर और पाँच कारतूसी रिवाल्वर खरीदे। प्रत्येक हथियार के साथ पचास या सौ कारतूस भी ले लिए। इन सब में लगभग चार हजार रुपये व्यय हुए। कुछ कटार तथा तलवारें इत्यादि भी खरीदी थीं।

मैनपुरी षड्यन्त्र

इधर तो हम लोग अपने कार्य में व्यस्थ थे, उधर मैनपुरी के एक सदस्य पर लीडरी का भूत सवार हुआ। उन्होंने अपना पृथक संगठन किया। कुछ अस्त्र-शस्त्र भी एकत्रित किए। धन की कमी की पूर्ति के लिये एक सदस्य ने कहा कि अपने किसी कुटुम्बी के यहाँ डाका डलवाओ, उस सदस्य ने कोई उत्तर न दिया। उसे आज्ञापत्र दिया गया और मार देने की धमकी दी गई। वह पुलिस के पास गया। मामला खुला। मैनपुरी में धरपकड़ शुरू हो गई। हम लोगों को भी समाचार मिला। दिल्ली में कांग्रेस होने वाली थी। विचार किया गया कि 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली' नामक पुस्तक जो यू. पी. सरकार ने जब्त कर ली थी, कांग्रेस के अवसर पर बेची जावे। कांग्रेस के उत्सव पर मैं शाहजहाँपुर की सेवा समिति के साथ अपनी एम्बुलेन्स की टोली लेकर गया। एम्बुलेन्स वालों को प्रत्येक स्थान पर बिना रोक जाने की आज्ञा थी। कांग्रेस-पंडाल के बाहर खुले रूप से नवयुवक यह कर कर पुस्तक बेच रहे थे - "यू.पी. से जब्त किताब अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली"। खुफिया पुलिस वालों ने कांग्रेस का कैम्प घेर लिया। सामने ही आर्यसमाज का कैम्प था, वहाँ पर पुस्तक विक्रेताओं की पुलिस ने तलाशी लेना आरम्भ कर दिया। मैंने कांग्रेस कैम्प पर अपने स्वयंसेवक इसलिए छोड़ दिये कि वे बिना स्वागतकारिणी समिति के मन्त्री या प्रधान की आज्ञा पाए किसी पुलिस वाले को कैम्प में न घुसने दें। आर्यसमाज कैम्प में गया। सब पुस्तकें एक टैंट में जमा थीं। मैंने अपने ओवरकोट में सब पुस्तकें लपेटीं, जो लगभग दो सौ होंगी, और उसे कन्धे पर डालकर पुलिस वालों के सामने से निकला। मैं वर्दी पहने था, टोप लगाए हुये था। एम्बुलेन्स का बड़ा सा लाल बिल्ला मेरे हाथ पर लगा हुआ था, किसी ने कोई सन्देह न किया और पुस्तकें बच गईं।

दिल्ली कांग्रेस से लौटकर शाहजहाँपुर आये। वहां भी पकड़-धकड़ शुरू हुई। हम लोग वहाँ से चलकर दूसरे शहर के एक मकान में ठहरे हुये थे। रात्रि के समय मकान मालिक ने बाहर से मकान में ताला डाल दिया। ग्यारह बजे के लगभग हमारा एक साथी बाहर से आया। उसने बाहर से ताला पड़ा देख पुकारा। हम लोगों को भी सन्देह हुआ, सब के सब दीवार पर से उतर कर मकान छोड़ कर चल दिए। अंधेरी रात थी। थोड़ी दूर गए थे कि हठात् की आवाज आई - 'खड़े हो जाओ, कौन जाता है ?' हम लोग सात-आठ आदमी थे, समझे कि

घिर गए। कदम उठाना ही चाहते थे कि फिर आवाज आई - 'खड़े हो जाओ, नहीं तो गोली मारते हैं'। हम लोग खड़े हो गए। थोड़ी देर में एक पुलिस का दारोगा बन्दूक हमारी तरफ किए हुए, रिवाल्वर कन्धे पर लटकाए, कई सिपाहियों को लिए हुए आ पहुँचे। पूछा - 'कौन हो ? कहाँ जाते हो ?' हम लोगों ने कहा - विद्यार्थी हैं, स्टेशन जा रहे हैं। 'कहां जाओगे'? 'लखनऊ'। उस समय रात के दो बजे थे। लखनऊ की गाड़ी पाँच बजे जाती थी। दारोगा जी को शक हुआ। लालटेन आई, हम लोगों के चेहरे रोशनी में देखकर उनका शक जाता रहा। कहने लगे - 'रात के समय लालटेन लेकर चला कीजिए। गलती हुई, मुआफ कीजिये'। हम लोग भी सलाम झाड़कर चलते बने। एक बाग में फूँस की मड़ैया पड़ी थी। उस में जा बैठे। पानी बरसने लगा। मूसलाधार पानी गिरा। सब कपड़े भीग गए। जमीन पर भी पानी भर गया। जनवरी का महीना था, खूब जाड़ा पड़ रहा था। रात भर भीगते और ठिठुरते रहे। बड़ा कष्ट हुआ। प्रातःकाल धर्मशाला में जाकर कपड़े सुखाये। दूसरे दिन शाहजहाँपुर आकर, बन्दूकें जमीन में गाड़कर प्रयाग पहुंचे।

विश्वासघात

प्रयाग की एक धर्मशाला में दो-तीन दिन निवास करके विचार किया गया कि एक व्यक्ति बहुत दुर्बलात्मा है, यदि वह पकड़ा गया तो सब भेद खुल जाएगा, अतः उसे मार दिया जाये। मैंने कहा - मनुष्य हत्या ठीक नहीं। पर अन्त में निश्चय हुआ कि कल चला जाये और उसकी हत्या कर दी जाये। मैं चुप हो गया। हम लोग चार सदस्य साथ थे। हम चारों तीसरे पहर झूंसी का किला देखने गये। जब लौटे तब सन्ध्या हो चुकी थी। उसी समय गंगा पार करके यमुना-तट पर गये। शौचादि से निवृत्त होकर मैं संध्या समय उपासना करने के लिए रेती पर बैठ गया। एक महाशय ने कहा - "यमुना के निकट बैठो"। मैं तट से दूर एक ऊँचे स्थान पर बैठा था। मैं वहीं बैठा रहा। वे तीनों भी मेरे पास आकर बैठ गये। मैं आँखें बन्द किये ध्यान कर रहा था। थोड़ी देर में खट से आवाज हुई। समझा कि साथियों में से कोई कुछ कर रहा होगा। तुरन्त ही फायर हुआ। गोली सन्न से मेरे कान के पास से निकल गई ! मैं समझ गया कि मेरे ऊपर ही फायर हुआ। मैं रिवाल्वर निकालता हुआ आगे को बढ़ा। पीछे फिर देखा, वह महाशय माउजर हाथ में लिए मेरे ऊपर गोली चला रहे हैं ! कुछ दिन पहले मुझसे उनका झगड़ा हो चुका था, किन्तु बाद में समझौता हो गया था। फिर भी उन्होंने यह कार्य किया। मैं भी सामना करने को प्रस्तुत हुआ। तीसरा फायर करके वह भाग खड़े हुए। उनके साथ प्रयाग में ठहरे हुए दो सदस्य और भी थे। वे तीनों भाग खड़े हुए। मुझे देर इसलिये हुई कि मेरा रिवाल्वर चमड़े के खोल में रखा था। यदि आधा मिनट और उनमें से कोई भी खड़ा रह जाता तो मेरी गोली का निशाना बन जाता। जब सब भाग गये, तब मैं गोली चलाना व्यर्थ जान, वहाँ से चला आया। मैं बाल-बाल बच गया। मुझ से दो गज के फासले

पर से माउजर पिस्तौल से गोलियाँ चलाईं गईं और उस अवस्था में जबकि मैं बैठा हुआ था ! मेरी समझ में नहीं आया कि मैं बच कैसे गया ! पहला कारतूस फूटा नहीं । तीन फायर हुए । मैं गद्‌गद्‌ होकर परमात्मा का स्मरण करने लगा । आनन्दोल्लास में मुझे मूर्छा आ गई । मेरे हाथ से रिवाल्वर तथा खोल दोनों गिर गये । यदि उस समय कोई निकट होता तो मुझे भली-भांति मार सकता था । मेरी यह अवस्था लगभग एक मिनट तक रही होगी कि मुझे किसी ने कहा, 'उठ !' मैं उठा । रिवाल्वर उठा लिया । खोल उठाने का स्मरण ही न रहा । 22 जनवरी की घटना है । मैं केवल एक कोट और एक तहमद पहने था । बाल बढ़ रहे थे । नंगे पैर में जूता भी नहीं । ऐसी हालत में कहाँ जाऊँ । अनेक विचार उठ रहे थे ।

इन्हीं विचारों में निमग्न यमुना-तट पर बड़ी देर तक घूमता रहा । ध्यान आया कि धर्मशाला में चलकर ताला तोड़ सामान निकालूँ । फिर सोचा कि धर्मशाला जाने से गोली चलेगी, व्यर्थ में खून होगा । अभी ठीक नहीं । अकेले बदला लेना उचित नहीं । और कुछ साथियों को लेकर फिर बदला लिया जाएगा । मेरे एक साधारण मित्र प्रयाग में रहते थे । उनके पास जाकर बड़ी मुश्किल से एक चादर ली और रेल से लखनऊ आया । लखनऊ आकर बाल बनवाये । धोती-जूता खरीदे, क्योंकि रुपये मेरे पास थे । रुपये न भी होते तो भी मैं सदैव जो चालीस पचास रुपये की सोने की अंगूठी पहने रहता था, उसे काम में ला सकता था । वहां से आकर अन्य सदस्यों से मिलकर सब विवरण कह सुनाया । कुछ दिन जंगल में रहा । इच्छा थी कि सन्यासी हो जाऊं । संसार कुछ नहीं । बाद को फिर माता जी के पास गया । उन्हें सब कह सुनाया । उन्होंने मुझे ग्वालियर जाने का आदेश दिया । थोड़े दिनों में माता-पिता सभी दादीजी के भाई के यहां आ गये । मैं भी पहुंच गया ।

मैं हर वक्त यही विचार किया करता कि मुझे बदला अवश्य लेना चाहिए । एक दिन प्रतिज्ञा करके रिवाल्वर लेकर शत्रु की हत्या करने की इच्छा में गया भी, किन्तु सफलता न मिली । इसी प्रकार उधेड़-बुन में मुझे ज्वर आने लगा । कई महीनों तक बीमार रहा । माता जी मेरे विचारों को समझ गई । माता जी ने बड़ी सान्त्वना दी । कहने लगी कि प्रतिज्ञा करो कि तुम अपनी हत्या की चेष्टा करने वालों को जान से न मारोगे । मैंने प्रतिज्ञा करने में आनाकानी की, तो वह कहने लगी कि मैं मातृऋण के बदले में प्रतिज्ञा कराती हूँ, क्या जवाब है ? मैंने उनसे कहा - "मैं उनसे बदला लेने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ ।" माता जी ने मुझे बाध्य कर मेरी प्रतिज्ञा भंग करवाई । अपनी बात पक्की रखी । मुझे ही सिर नीचा करना पड़ा । उस दिन से मेरा ज्वर कम होने लगा और मैं अच्छा हो गया ।

पलायनावस्था

मैं ग्राम में ग्रामवासियों की भांति उसी प्रकार के कपड़े पहनकर रहने लगा। देखने वाले अधिक से अधिक इतना समझ सकते थे कि मैं शहर में रह रहा हूँ, सम्भव है कुछ पढ़ा भी होऊँ। खेती के कामों में मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया। शरीर तो हृष्ट-पुष्ट था ही, थोड़े ही दिनों में अच्छा-खासा किसान बन गया। उस कठोर भूमि में खेती करना कोई सरल काम नहीं। बबूल, नीम के अतिरिक्त कोई एक-दो आम के वृक्ष कहीं भले ही दिखाई दे जाएँ। बाकी यह नितान्त मरुभूमि है। खेत में जाता था। थोड़ी ही देर में झरबेरी के कांटों से पैर भर जाते। पहले-पहल तो बड़ा कष्ट प्रतीत हुआ। कुछ समय पश्चात् अभ्यास हो गया। जितना खेत उस देश का एक बलिष्ठ पुरुष दिन भर जोत सकता था, उतना मैं भी जोत लेता था। मेरा चेहरा बिल्कुल काला पड़ गया। थोड़े दिनों के लिये मैं शाहजहाँपुर की ओर घूमने आया तो कुछ लोग मुझे पहचान भी न सके! मैं रात को शाहजहाँपुर पहुँचा। गाड़ी छूट गई। दिन के समय पैदल जा रहा था कि एक पुलिस वाले ने पहचान लिया। वह और पुलिस वालों को लेने के लिए गया। मैं भागा, पहले दिन का ही थका हुआ था। लगभग बीस मील पहले दिन पैदल चला था। उस दिन भी पैंतीस मील पैदल चलना पड़ा।

मेरे माता-पिता ने सहायता की। मेरा समय अच्छी प्रकार व्यतीत हो गया। माताजी की पूँजी तो मैंने नष्ट कर दी। पिताजी से सरकार की ओर से कहा गया कि लड़के की गिरफ्तारी के वारंट की पूर्ति के लिए लड़के का हिस्सा, जो उसके दादा की जायदाद होगी, नीलाम किया जाएगा। पिताजी घबड़ाकर दो हजार के मकान को आठ सौ में तथा और दूसरी चीजें भी थोड़े दामों में बेचकर शाहजहाँपुर छोड़कर भाग गए। दो बहनों का विवाह हुआ। जो कुछ रहा बचा था, वह भी व्यय हो गया। माता-पिता की हालत फिर निर्धनों जैसी हो गई। समिति के जो दूसरे सदस्य भागे हुए थे, उनकी बहुत बुरी दशा हुई। महीनों चनों पर ही समय काटना पड़ा। दो चार रुपये जो मित्रों तथा सहायकों से मिल जाते थे, उन्हीं पर ही गुजर होता था। पहनने के कपड़े तक न थे। विवश हो रिवाल्वर तथा बन्दूकें बेचीं, तब दिन कटे। किसी से कुछ कह भी न सकते थे और गिरफ्तारी के भय के कारण कोई व्यवस्था या नौकरी भी न कर सकते थे।

उसी अवस्था में मुझे व्यवसाय करने की सूझी। मैंने अपने सहपाठी तथा मित्र श्रीयुत सुशीलचन्द्र सेन, जिनका देहान्त हो चुका था, की स्मृति में बंगला भाषा का अध्ययन किया। मेरे छोटे भाई का जन्म हुआ तो मैंने उसका

नाम सुशीलचन्द्र रखा। मैंने विचारा कि एक पुस्तकमाला निकालूं, लाभ भी होगा। कार्य भी सरल है। बंगला से हिन्दी में पुस्तकों का अनुवाद करके प्रकाशित करवाऊँगा। अनुभव कुछ भी नहीं था। बंगला पुस्तक 'निहिलिस्ट रहस्य' का अनुवाद प्रारम्भ कर दिया। जिस प्रकार अनुवाद किया, उसका स्मरण कर कई बार हंसी आ जाती है। कई बैल, गाय तथा भैंस लेकर ऊसर में चराने के लिए जाया करता था। खाली बैठा रहना पड़ता था, अतएव कापी-पैंसिल साथ ले जाता और पुस्तक का अनुवाद किया करता था। पशु जब कहीं दूर निकल जाते तब अनुवाद छोड़ लाठी लेकर उन्हें हकारने जाया करता था। कुछ समय के लिए एक साधु की कुटी पर जाकर रहा। वहाँ अधिक समय अनुवाद करने में व्यतीत करता था। खाने के लिए आटा ले जाता था। चार-पाँच दिन के लिए आटा इकट्ठा रखता था। भोजन स्वयं पका लेता था। अब पुस्तक ठीक हो गई, तो 'सुशील-माला' के नाम से ग्रन्थमाला निकाली। पुस्तक का नाम 'बोलशेविकों की करतूत' रखा। दूसरी पुस्तक 'मन की लहर' छपवाई। इस व्यवसाय में लगभग पांच सौ रुपये की हानि हुई। जब राजकीय घोषणा हुई और राजनैतिक कैदी छोड़े गए, तब शाहजहाँपुर आकर कोई व्यवसाय करने का विचार हुआ, ताकि माता-पिता की कुछ सेवा हो सके। विचार किया करता था कि इस जीवन में अब फिर कभी आजादी से शाहजहाँपुर में विचरण न कर सकूँगा, पर परमात्मा की लीला अपार है। वे दिन आये। मैं पुनः शाहजहाँपुर का निवासी हुआ।

पं० गेंदालाल दीक्षित

आपका जन्म यमुना-तट पर बटेश्वर के निकट 'मई' ग्राम में हुआ था। आपने मैट्रिक्यूलेशन (दसवां) दर्जा अंग्रेजी का पास किया था। आप जब ओरैया जिला इटावा में डी० ए० वी० स्कूल में टीचर थे, तब आपने शिवाजी समिति की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य था शिवाजी की भांति दल बना कर लूटमार करवाना, उसमें से चौथ लेकर हथियार खरीदना और उस दल में बांटना। इसकी सफलता के लिए आप रियासत से हथियार ला रहे थे जो कुछ नवयुवकों की असावधानी के कारण आगरा में स्टेशन के निकट पकड़ लिए गए थे। आप बड़े वीर तथा उत्साही थे। शान्त बैठना जानते ही न थे। नवयुवकों को सदैव कुछ न कुछ उपदेश देते रहते थे। एक एक सप्ताह तक बूट तथा वर्दी न उतारते थे। जब आप ब्रह्मचारी जी के पास सहायता लेने गए तो दुर्भाग्यवश गिरफ्तार कर लिए गए। ब्रह्मचारी के दल ने अंग्रेजी राज्य में कई डाके डाले थे। डाके डालकर ये लोग चम्बल के बीहड़ों में छिप जाते थे। सरकारी राज्य की ओर से ग्वालियर महाराज को लिखा गया। इस दल के पकड़ने का प्रबन्ध किया गया। सरकार ने तो हिन्दुस्तानी फौज भी भेजी थी, जो आगरा जिले में चम्बल के किनारे बहुत दिनों तक पड़ी रही। पुलिस सवार तैनात किए फिर भी ये लोग भयभीत न हुए। विश्वासघात में पकड़े गए। इन्हीं का एक आदमी पुलिस ने मिला लिया। डाका डालने के लिए दूर एक स्थान निश्चित किया गया,

जहां तक जाने के लिए एक पड़ाव देना पड़ता था। चलते-चलते सब थक गए, पड़ाव दिया गया। जो आदमी पुलिस से मिला हुआ था, उसने भोजन लाने को कहा, क्योंकि उसके किसी निकट सम्बंधी का मकान निकट था। वह पूड़ी बनवा कर लाया। सब पूड़ी खाने लग गए। ब्रह्मचारी जी जो सदैव अपने हाथ से बनाकर भोजन करते थे या आलू अथवा घुइयां भून कर खाते थे, उन्होंने भी उस दिन पूड़ी खाना स्वीकार किया। सब भूखे तो थे ही, खाने लगे। ब्रह्मचारी जी ने एक पूड़ी ही खाई उनकी जबान ऐंठने लगी और जो अधिक खा गए थे वे गिर गए। पूरी लाने वाला पानी लेने के बहाने चल दिया। पूड़ियों में विष मिला हुआ था। ब्रह्मचारी जी ने बन्दूक उठाकर पूरी लाने वाले पर गोली चलाई। ब्रह्मचारी जी का गोली चलाना था कि चारों ओर से गोली चलने लगी। पुलिस छिपी हुई थी। गोली चलने से ब्रह्मचारी जी के कई गोली लगीं। तमाम शरीर घायल हो गया। पं० गेंदालाल जी की आँख में एक छर्रा लगा। बाईं आँख जाती रही। कुछ आदमी जहर के कारण मरे, कुछ लोगी से मारे गए, इस प्रकार 80 आदमियों में से 25-30 जान से मारे गए। सब पकड़ कर ग्वालियर के किले में बन्द कर दिए गए। किले में हम लोग जब पण्डित जी से मिले, तब चिट्ठी भेजकर उन्होंने हमको सब हाल बताया। एक दिन किले में हम लोगों पर भी सन्देह हो गया था, बड़ी कठिनता से एक अधिकारी की सहायता से हम लोग निकल सके।

जब मैनपुरी षड्यन्त्र का अभियोग चला, पण्डित गेंदालालजी को सरकार ने ग्वालियर राज्य से मँगाया। ग्वालियर के किले का जलवायु बड़ा ही हानिकारक था। पण्डित जी को क्षय रोग हो गया था। मैनपुरी स्टेशन से जेल जाते समय ग्यारह बार रास्ते में बैठ कर जेल पहुंचे। पुलिस ने जब हाल पूछा तो उन्होंने कहा - "बालकों को क्यों गिरफ्तार किया है ? मैं हाल बताऊँगा।" पुलिस को विश्वास हो गया। आपको जेल से निकाल कर दूसरे सरकारी गवाहों के निकट रख दिया। वहाँ पर सब विवरण जान रात्रि के समय एक और सरकारी गवाह को लेकर पण्डित जी भाग खड़े हुए। भाग कर एक गांव में एक कोठरी में ठहरे। साथी कुछ काम के लिए बाजार गया और फिर लौट कर न आया, बाहर से कोठरी की जंजीर बन्द कर गया। पण्डित जी उसी कोठरी में तीन दिन बिना अन्न-जल बन्द रहे। समझे कि साथी किसी आपत्ति में फंस गया होगा, अन्त में किसी प्रकार जंजीर खुलवाई। रुपये वह साथ ही ले गया था। पास एक पैसा भी न था। कोटा से पैदल आगरा आए। किसी प्रकार अपने घर पहुँचे। बहुत बीमार थे। पिता ने यह समझ कर कि घर वालों पर आपत्ति न आए, पुलिस को सूचना देनी चाही। पण्डित जी ने पिता से बड़ी विनय-प्रार्थना की और दो-तीन दिन में घर छोड़ दिया। हम लोगों की बहुत खोज की। किसी का कुछ पता न पाया, दिल्ली में एक प्याऊ पर पानी पिलाने की नौकरी कर ली। अवस्था दिनों दिन बिगड़ रही थी। रोग भीषण रूप धारण कर रहा था। छोटे

भाई तथा पत्नी को बुलाया । भाई किंकर्त्तव्यविमूढ़ ! वह क्या कर सकता था ? सरकारी अस्पताल में भर्ती कराने ले गया । पण्डित जी की धर्मपत्नी को दूसरे स्थान में भेजकर जब वह अस्पताल आया, तो जो देखा उसे लिखते हुए लेखनी कम्पायमान होती है ! पण्डित जी शरीर त्याग चुके थे । केवल उनका मृत शरीर मात्र ही पड़ा हुआ था । स्वदेश की कार्य-सिद्धि में पं० गेंदालाल जी दीक्षित ने जिस निःसहाय अवस्था में अन्तिम बलिदान दिया, उसकी स्वप्न में भी आशंका नहीं थी । पण्डित जी की प्रबल इच्छा थी कि उनकी मृत्यु गोली लगकर हो । भारतवर्ष की एक महान आत्मा विलीन हो गई और देश में किसी ने जाना भी नहीं ! आपकी विस्तृत जीवनी 'प्रभा' मासिक पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी है । मैनपुरी षड्यन्त्र के मुख्य नेता आप ही समझ गए थे । इस षड्यन्त्र में विशेषताएं ये हुईं कि नेताओं में से केवल दो व्यक्ति पुलिस के हाथ आए, जिनमें गेंदालाल दीक्षित एक सरकारी गवाह को लेकर भाग गए, श्रीयुत शिवकृष्ण जेल से भाग गए, फिर हाथ न आए । छः मास के पश्चात जिन्हें सजा हुई वे भी राजकीय घोषणा से मुक्त कर दिए गए । खुफिया पुलिस विभाग का क्रोध पूर्णतया शांत न हो सका और उनकी बदनामी भी इस केस में बहुत हुई ।

तृतीय खंड

स्वतन्त्र जीवन

राजकीय घोषणा के पश्चात जब मैं शाहजहांपुर आया तो शहर की अद्‌भुत दशा देखी। कोई पास तक खड़े होने का साहस न करता था ! जिसके पास मैं जाकर खड़ा हो जाता था, वह नमस्ते कर चल देता था। पुलिस का बड़ा प्रकोप था। प्रत्येक समय वह छाया की भांति पीछे-पीछे फिरा करती थी। इस प्रकार का जीवन कब तक व्यतीत किया जाए ? मैंने कपड़ा बुनने का काम सीखना आरम्भ किया। जुलाहे बड़ा कष्ट देते थे। कोई काम सिखाना नहीं चाहता था। बड़ी कठिनता से मैंने कुछ काम सीखा। उसी समय एक कारखाने में मैनेजरी का स्थान खाली हुआ। मैंने उस स्थान के लिये प्रयत्न किया। मुझ से पाँच सौ रुपये की जमानत माँगी गई। मेरी दशा बड़ी शोचनीय थी। तीन-तीन दिवस तक भोजन प्राप्त नहीं होता था, क्योंकि मैंने प्रतिज्ञा की थी कि किसी से कुछ सहायता न लूँगा। पिता जी से बिना कुछ कहे मैं चला आया था। मैं पाँच सौ रुपये कहाँ से लाता। मैंने दो-एक मित्रों से केवल दो सौ रुपए की जमानत देने की प्रार्थना की। उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। मेरे हृदय पर वज्रपात हुआ। संसार अंधकारमय दिखाई देता था। पर बाद को एक मित्र की कृपा से नौकरी मिल गई। अब अवस्था कुछ सुधरी। मैं सभ्य पुरुषों की भांति समय व्यतीत करने लगा। मेरे पास भी चार पैसे हो गए। वे ही मित्र, जिनसे मैंने दो सौ रुपए की जमानत देने की प्रार्थना की थी, अब मेरे पास चार-चार हजार रुपयों की थैली अपनी बन्दूक, लाइसेंस आदि सब डाल जाते थे कि मेरे यहां उनकी वस्तुएं सुरक्षित रहेंगी ! समय के इस फेर को देखकर मुझे हँसी आती थी।

इस प्रकार कुछ काल व्यतीत हुआ। दो-चार ऐसे पुरुषों से भेंट हुई, जिन को पहले मैं बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उन लोगों ने मेरी पलायनावस्था के सम्बन्ध में कुछ समाचार सुने थे। मुझ से मिलकर वे बड़े प्रसन्न हुए। मेरी लिखी हुई पुस्तकें भी देखीं। इस समय मैं तीसरी पुस्तक 'कैथेराइन' लिख चुका था। मुझे पुस्तकों के व्यवसाय में बहुत घाटा हो चुका था। मैंने माला का प्रकाशन स्थगित कर दिया। 'कैथेराइन' एक पुस्तक प्रकाशक को दे दी। उन्होंने बड़ी कृपा कर उस पुस्तक को थोड़े हेर-फेर के साथ प्रकाशित कर दिया। 'कैथेराइन' को देखकर मेरे इष्ट मित्रों को बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने मुझे पुस्तक लिखते रहने के लिए बड़ा उत्साहित किया। मैंने 'स्वदेशी रंग' नामक एक और पुस्तक लिख कर एक पुस्तक प्रकाशक को दी। वह भी प्रकाशित हो गई।

बड़े परिश्रम के साथ मैंने एक पुस्तक 'क्रान्तिकारी जीवन' लिखी। 'क्रान्तिकारी जीवन' को कई प्रकाशकों ने

देखा, पर किसी का साहस न हो सका कि उसको प्रकाशित करें ! आगरा, कानपुर, कलकत्ता इत्यादि कई स्थानों में घूम कर पुस्तक मेरे पास लौट आई । कई मासिक पत्रिकाओं में 'राम' तथा 'अज्ञात' नाम से मेरे लेख प्रकाशित हुआ करते थे । लोग बड़े चाव से उन लेखों का पाठ करते थे । मैंने किसी स्थान पर लेखन शैली का नियमपूर्वक अध्ययन न किया था । बैठे-बैठे खाली समय में ही कुछ लिखा करता और प्रकाशनार्थ भेज दिया करता था । अधिकतर बंगला तथा अंग्रेजी की पुस्तकों से अनुवाद करने का ही विचार था । थोड़े समय के पश्चात श्रीयुत अरविन्द घोष की बंगला पुस्तक 'यौगिक साधन' का अनुवाद किया । दो-एक पुस्तक-प्रकाशकों को दिखाया पर वे अति अल्प पारितोषिक देकर पुस्तक लेना चाहते थे । आजकल के समय में हिन्दी के लेखकों तथा अनुवादकों की अधिकता के कारण पुस्तक प्रकाशकों को भी बड़ा अभिमान हो गया है । बड़ी कठिनता से बनारस के एक प्रकाशक ने 'यौगिक साधन' प्रकाशित करने का वचन दिया ।

पर थोड़े दिनों में वह स्वयं ही अपने साहित्य मन्दिर में ताला डालकर कहीं पधार गए । पुस्तक का अब तक कोई पता न लगा । पुस्तक अति उत्तम थी । प्रकाशित हो जाने से हिन्दी साहित्य-सेवियों को अच्छा लाभ होता । मेरे पास जो 'बोलशेविक करतूत' तथा 'मन की लहर' की प्रतियां बची थीं, वे मैंने लागत से भी कम मूल्य पर कलकत्ता के एक व्यक्ति श्रीयुत दीनानाथ सगतिया को दे दीं । बहुत थोड़ी पुस्तकें मैंने बेची थीं । दीनानाथ महाशय पुस्तकें हड़प कर गए । मैंने नोटिस दिया । नालिश की । लगभग चार सौ रुपये की डिग्री भी हुई, किन्तु दीनानाथ महाशय का कहीं पता न चला । वह कलकत्ता छोड़कर पटना गए । पटना से भी कई गरीबों का रुपया मार कर कहीं अन्तर्धान हो गए । अनुभवहीनता से इस प्रकार ठोकरें खानी पड़ीं । कोई पथ-प्रदर्शक तथा सहायक नहीं था, जिस से परामर्श करता । व्यर्थ के उद्योग धन्धों तथा स्वतन्त्र कार्यों में शक्ति का व्यय करता रहा ।

पुनः संगठन

जिन महानुभावों को मैं पूजनीय दृष्टि से देखता था, उन्हीं ने अपनी इच्छा प्रकट की कि मैं क्रान्तिकारी दल का पुनः संगठन करूं । गत जीवन के अनुभव से मेरा हृदय अत्यंत दुखित था । मेरा साहस न देखकर इन लोगों ने बहुत उत्साहित किया और कहा कि हम आपको केवल निरीक्षण का कार्य देंगे, बाकी सब कार्य स्वयं करेंगे । कुछ मनुष्य हमने जुटा लिए हैं, धन की कमी न होगी, आदि । मान्य पुरुषों की प्रवृत्ति देखकर मैंने भी स्वीकृति दे दी । मेरे पास जो अस्त्र-शस्त्र थे, मैंने दिए । जो दल उन्होंने एकत्रित किया था, उसके नेता से मुझे मिलाया । उसकी वीरता की बड़ी प्रशंसा की । वह एक अशिक्षित ग्रामीण पुरुष था । मेरी समझ में आ गया कि यह बदमाशों का या स्वार्थी जनों का कोई संगठन है । मुझ से उस दल के नेता ने दल का कार्य निरीक्षण करने की

प्रार्थना की। दल में कई फौज से आए हुए लड़ाई पर से वापस किए गए व्यक्ति भी थे। मुझे इस प्रकार के व्यक्तियों से कभी कोई काम न पड़ा था। मैं दो-एक महानुभावों को साथ ले इन लोगों का कार्य देखने के लिए गया।

थोड़े दिनों बाद इस दल के नेता महाशय एक वेश्या को भी ले आए। उसे रिवाल्वर दिखाया कि यदि कहीं गई तो गोली से मार दी जाएगी। यह समाचार सुन उसी दल के दूसरे सदस्य ने बड़ा क्रोध प्रकाशित किया और मेरे पास खबर भेजने का प्रबन्ध किया। उसी समय एक दूसरा आदमी पकड़ा गया, जो नेता महाशय को जानता था। नेता महाशय रिवाल्वर तथा कुछ सोने के आभूषणों सहित गिरफ्तार हो गए। उनकी वीरता की बड़ी प्रशंसा सुनी थी, जो इस प्रकार प्रकट हुई कि कई आदमियों के नाम पुलिस को बताए और इकबाल कर लिया ! लगभग तीस-चालीस आदमी पकड़े गए।

एक दूसरा व्यक्ति जो बहुत वीर था, पुलिस उसके पीछे पड़ी हुई थी। एक दिन पुलिस कप्तान ने सवार तथा तीस-चालीस बन्दूक वाले सिपाही लेकर उनके घर में उसे घेर लिया। उसने छत पर चढ़कर दोनाली कारतूसी बन्दूक से लगभग तीन सौ फायर किए। बन्दूक गरम होकर गल गई। पुलिस वाले समझे कि घर में कई आदमी हैं। सब पुलिस वाले छिपकर आड़ में से सुबह की प्रतीक्षा करने लगे। उसने मौका पाया। मकान के पीछे से कूद पड़ा, एक सिपाही ने देख लिया। उसने सिपाही की नाक पर रिवाल्वर का कुन्दा मारा। सिपाही चिल्लाया। सिपाही के चिल्लाते ही मकान में से एक फायर हुआ। पुलिस वाले समझे मकान ही में है। सिपाही को धोखा हुआ होगा। बस, वह जंगल में निकल गया। अपनी स्त्री को एक टोपीदार बन्दूक दे आया था कि यदि चिल्लाहट हो तो एक फायर कर देना। ऐसा ही हुआ। और वह निकल गया। जंगल में जाकर एक दूसरे दल से मिला। जंगल में भी एक समय पुलिस कप्तान से सामना हो गया। गोली चली। उसके भी पैर में छर्रे लगे थे। अब यह बड़े साहसी हो गए थे। समझ गए थे कि पुलिस वाले किस प्रकार समय पर आड़ में छिप जाते हैं। इन लोगों का दल छिन्न-भिन्न हो गया था। अतः उन्होंने मेरे पास आश्रय लेना चाहा। मैंने बड़ी कठिनता से अपना पीछा छुड़ाया। तत्पश्चात् जंगल में जाकर ये दूसरे दल से मिल गए। वहाँ पर दुराचार के कारण जंगल के नेता ने इन्हें गोली से मार दिया। इस प्रकार सब छिन्न-भिन्न हो गया। जो पकड़े गए उन पर कई डकैतियां चली। किसी को तीस साल, किसी को पचास साल, किसी को बीस साल की सजाएं हुईं। एक बेचारा, जिसका किसी डकैती से कोई सम्बन्ध न था, केवल शत्रुता के कारण फंसा दिया गया। उसे फांसी हो गई और सब प्रकार डकैतियों में सम्मिलित था, जिसके पास डकैती का माल तथा कुछ हथियार पाए गए। पुलिस से गोली भी चली, उसे पहले फांसी की सजा की आज्ञा हुई, पर पैरवी अच्छी हुई, अतएव हाईकोर्ट से फांसी की सजा

माफ हो गई, केवल पांच वर्ष की सजा रह गई । जेल वालों से मिलकर उसने डकैतियों में शिनाख्त न होने दी थी । इस प्रकार इस दल की समाप्ति हुई । दैवयोग से हमारे अस्त्र बच गए । केवल एक ही रिवाल्वर पकड़ा गया ।

नोट बनाना

इसी बीच मेरे एक मित्र की एक नोट बनाने वाले महाशय से भेंट हुई । उन्होंने बड़ी बड़ी आशाएँ बांधी । बड़ी लम्बी-लम्बी स्कीम बांधने के पश्चात् मुझ से कहा कि एक नोट बनाने वाले से भेंट हुई है । बड़ा दक्ष पुरुष है । मुझे भी बना हुआ नोट देखने की बड़ी उत्कट इच्छा थी । मैंने उन सज्जन के दर्शन की इच्छा प्रकट की । जब उक्त नोट बनाने वाले महाशय मुझे मिले तो बड़ी कौतूहलोत्पादक बातें की । मैंने कहा कि मैं स्थान तथा आर्थिक सहायता दूंगा, नोट बनाओ । जिस प्रकार उन्होंने मुझ से कहा, मैंने सब प्रबन्ध कर दिया, किन्तु मैंने कह दिया था कि नोट बनाते समय मैं वहाँ उपस्थित रहूँगा, मुझे बताना कुछ मत, पर मैं नोट बनाने की रीति अवश्य देखना चाहता हूँ । पहले-पहल उन्होंने दस रुपए का नोट बनाने का निश्चय किया । मुझसे एक दस रुपये का नया साफ नोट मंगाया । नौ रुपये दवा खरीदने के बहाने से ले गए । रात्रि में नोट बनाने का प्रबन्ध हुआ । दो शीशे लाए । कुछ कागज भी लाए । दो तीन शीशियों में कुछ दवाई थी । दवाइयों को मिलाकर एक प्लेट में सादे कागज पानी में भिगोए । मैं जो साफ नोट लाया था, उस पर एक सादा कागज लगाकर दोनों को दूसरी दवा डालकर धोया । फिर दो सादे कागजों में लपेट एक पुड़िया सी बनाई और अपने एक साथी को दी कि उसे आग पर गरम कर लाए । आग वहां से कुछ दूर पर जलती थी । कुछ समय तक वह आग पर गरम करता रहा और पुड़िया लाकर वापस दे दी । नोट बनाने वाले ने पुड़िया खोलकर दोनों शीशों को दवा में धोया और फीते से शीशों को बांधकर रख दिया और कहा कि दो घण्टे में नोट बन जाएगा । शीशे रख दिये । बातचीत होने लगी । कहने लगा, 'इस प्रयोग में बड़ा व्यय होता है । छोटे मोटे नोट बनाने में कोई लाभ नहीं । बड़े नोट बनाने चाहियें, जिससे पर्याप्त धन की प्राप्ति हो ।' इस प्रकार मुझे भी सिखा देने का वचन दिया । मुझे कुछ कार्य था । मैं जाने लगा तो वह भी चला गया । दो घण्टे के बाद आने का निश्चय हुआ ।

मैं विचारने लगा कि किस प्रकार एक नोट के ऊपर दूसरा सादा कागज रखने से नोट बन जाएगा । मैंने प्रेस का काम सीखा था । थोड़ी बहुत फोटोग्राफी भी जानता था । साइन्स (विज्ञान) का भी अध्ययन किया था । कुछ समझ में न आया कि नोट सीधा कैसे छपेगा । सबसे बड़ी बात तो यह थी कि नम्बर कैसे छपेंगे । मुझे बड़ा भारी सन्देह हुआ । दो घण्टे बाद मैं जब गया तो रिवाल्वर भरकर जेब में डालकर ले गया । यथासमय वह महाशय आये । उन्होंने शीशे खोलकर कागज खोले । एक मेरा लाया हुआ नोट और दूसरा एक दस रुपये का नोट उसी के ऊपर से उतारकर सुखाया । कहा - 'कितना साफ नोट है !' मैंने हाथ में लेकर देखा । दोनों नोटों के

नम्बर मिलाये। नम्बर नितान्त भिन्न-भिन्न थे। मैंने जेब से रिवाल्वर निकाल नोट बनाने वाले महाशय की छाती पर रख कर कहा 'बदमाश ! इस तरह ठगता फिरता है ?' वह कांपकर गिर पड़ा। मैंने उसको उसकी मूर्खता समझाई कि यह ढ़ोंग ग्रामवासियों के सामने चल सकता है, अनजान पढ़े-लिखे भी धोखे में आ सकते हैं। किन्तु तू मुझे धोखा देने आया है ! अन्त में मैंने उससे प्रतिज्ञा पत्र लिखाकर, उस पर उसके हाथों की दसों अंगुलियों के निशान लगवाये कि वह ऐसा काम न करेगा। दसों अंगुलियों के निशान देने में उसने कुछ ढ़ील की। मैंने रिवाल्वर उठाकर कहा कि गोली चलती है, उसने तुरन्त दसों अंगुलियों के निशान बना दिये। वह बुरी तरह कांप रहा था। मेरे उन्नीस रुपये खर्च हो चुके थे। मैंने दोनों नोट रख लिए और शीशे, दवाएं इत्यादि सब छीन लीं कि मित्रों को तमाशा दिखाऊंगा। तत्पश्चात् उन महाशय को विदा किया। उसने किया यह था कि जब अपने साथी को आग पर गरम करने के लिए कागज की पुड़िया दी थी, उसी समय वह साथी सादे कागज की पुड़िया बदल कर दूसरी पुड़िया ले आया जिसमें दोनों नोट थे। इस प्रकार नोट बन गया। इस प्रकार का एक बड़ा भारी दल है, जो सारे भारतवर्ष में ठगी का काम करके हजारों रुपये पैदा करता है। मैं एक सज्जन को जानता हूँ जिन्होंने इसी प्रकार पचास हजार से अधिक रुपए पैदा कर लिए। होता यह है कि ये लोग अपने एजेण्ट रखते हैं। वे एजेंट साधारण पुरुषों के पास जाकर जोट बनाने की कथा कहते हैं। आता धन किसे बुरा लगता है? वे नोट बनवाते हैं। इस प्रकार पहले दस का नोट बनाकर दिया, वे बाजार में बेच आये। सौ रुपये का बनाकर दिया वह भी बाजार में चलाया, और चल क्यों न जाये? इस प्रकार के सब नोट असली होते हैं। वे तो केवल चाल में रख दिये जाते हैं। इसके बाद कहा कि हजार या पाँच सौ का नोट लाओ तो कुछ धन भी मिले। जैसे-तैसे करके बेचारा एक हजार का नोट लाया। सादा कागज रखकर शीशे में बांध दिया। हजार का नोट जेब में रखा और चम्पत हुए ! नोट के मालिक रास्ता देखते हैं, वहां नोट बनाने वाले का पता ही नहीं। अन्त में विवश हो शीशों को खोला जाता है, तो सादे कागजों के अलावा कुछ नहीं मिलता, वे अपने सिर पर हाथ मारकर रह जाते हैं। इस डर से कि यदि पुलिस को मालूम हो गया तो और लेने के देने पड़ेंगे, किसी से कुछ कह भी नहीं सकते। कलेजा मसोसकर रह जाते हैं। पुलिस ने इस प्रकार के कुछ अभियुक्तों को गिरफ्तार भी किया, किन्तु ये लोग पुलिस को नियमपूर्वक चौथ देते रहते हैं और इस कारण बचे रहते हैं।

चालबाजी

कई महानुभावों ने गुप्त समिति नियमादि बनाकर मुझे दिखाये। उनमें एक नियम यह भी था कि जो व्यक्ति समिति का कार्य करें, उन्हें समिति की ओर से कुछ मासिक दिया जाये। मैंने इस नियम को अनिवार्य रूप से

माननना अस्वीकार किया। मैं यहां तक सहमत था कि जो व्यक्ति सर्व-प्रकारेण समिति के कार्य में अपना समय व्यतीत करें, उनको केवल गुजारा-मात्र समिति की ओर से दिया जा सकता है। जो लोग किसी व्यवस्था को करते हैं, उन्हें किसी प्रकार का मासिक भत्ता देना उचित न होगा। जिन्हें समिति के कोष में से कुछ दिया जाये, उनको भी कुछ व्यवसाय करने का प्रबन्ध करना उचित है, ताकि ये लोग सर्वथा समिति की सहायता पर निर्भर रहकर निरे भाड़े के टट्टू न बन जाएं। भाड़े के टट्टुओं से समिति का कार्य लेना, जिसमें कतिपय मनुष्यों के प्राणों का उत्तरदायित्व हो और थोड़ा-सा भेद खुलने से ही बड़ा भयंकर परिणाम हो सकता है, उचित नहीं है। तत्पश्चात् उन महानुभावों की सम्मति हुई कि एक निश्चित कोष समिति के सदस्यों को देने के निमित्त स्थापित किया जाये, जिसकी आय का ब्यौरा इस प्रकार हो कि डकैतियों से जितना धन प्राप्त हो उसका आधा समिति के कार्यों में व्यय किया जाए और आधा समिति के सदस्यों को बराबर बराबर बांट दिया जाए। इस प्रकार के परामर्श से मैं सहमत न हो सका और मैंने इस प्रकार की गुप्त समिति में, जिसका एक उद्देश्य पेट-पूर्ति हो, योग देने से इन्कार कर दिया। जब मेरी इस प्रकार की दृष्टि देखी तो उन महानुभावों ने आपस में षड्यंत्र रचा।

जब मैंने उन महानुभावों के परामर्श तथा नियमादि को स्वीकार न किया तो वे चुप हो गए। मैं भी कुछ समझ न सका कि जो लोग मुझ में इतनी श्रद्धा रखते थे, जिन्होंने कई प्रकार की आशाएं देखकर मुझ से क्रान्तिकारी दल का पुनर्संगठन करने की प्रार्थनाएं की थीं, अनेकों प्रकार की उम्मीदें बंधाई थीं, सब कार्य स्वयं करने के वचन दिए थे, वे लोग ही मुझसे इस प्रकार के नियम बनाने की मांग करने लगे। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रथम प्रयत्न में, जिस समय मैं मैनपुरी षड्यन्त्र के सदस्यों के सहित कार्य करता था, उस समय हममें से कोई भी अपने व्यक्तिगत (प्राइवेट) खर्च में समिति का धन व्यय करना पूर्ण पाप समझता था। जहाँ तक हो सकता अपने खर्च के लिए माता-पिता से कुछ लाकर प्रत्येक सदस्य समिति के कार्यों में धन व्यय किया करता था। इसका कारण मेरा साहस इस प्रकार के नियमों में सहमत होने का न हो सका। मैंने विचार किया कि यदि कोई समय आया और किसी प्रकार अधिक धन प्राप्त हुआ, तो कुछ सदस्य ऐसे स्वार्थी हो सकते हैं, जो अधिक धन लेने की इच्छा करें, और आपस में वैमनस्य बढ़े। जिसके परिणाम बड़े भयंकर हो सकते हैं। अतः इस प्रकार के कार्य में योग देना मैंने उचित न समझा।

मेरी यह अवस्था देख इन लोगों ने आपस में ष्डयन्त्र रचा, कि जिस प्रकार मैं कहूँ वे नियम स्वीकार कर लें और

विश्वास दिलाकर जितने अस्त्र-शस्त्र मेरे पास हों, उनको मुझसे लेकर सब पर अपना आधिपत्य जमा लें। यदि मैं अस्त्र-शस्त्र मांगूं तो मुझ से युद्ध किया जाए और आवश्यकता पड़े तो मुझे कहीं ले जाकर जान से मार दिया जाये। तीन सज्जनों ने इस प्रकार ष्ड्यन्त्र रचा और मुझसे चालबाजी करनी चाही। दैवात् उनमें से एक सदस्य के मन में कुछ दया आ गई। उसने आकर मुझसे सब भेद कह दिया। मुझे सुनकर बड़ा खेद हुआ कि जिन व्यक्तियों को मैं पिता तुल्य मानकर श्रद्धा करता हूँ वे ही मेरे नाश करने के लिए इस प्रकार नीचता का कार्य करने को उद्यत हैं। मैं सम्भल गया। मैं उन लोगों से सतर्क रहने लगा कि पुनः प्रयाग जैसी घटना न घटे। जिन महाशय ने मुझसे भेद कहा था, उनकी उत्कट इच्छा थी कि वह एक रिवाल्वर रखें और इस इच्छा पूर्ति के लिए उन्होंने मेरा विश्वासपात्र बनने के कारण मुझसे भेद कहा था। मुझ से एक रिवाल्वर मांगा कि मैं उन्हें कुछ समय के लिए रिवाल्वर दे दूँ। यदि मैं उन्हें रिवाल्वर दे देता तो वह उसे हजम कर जाते! मैं कर ही क्या सकता था। बाद को बड़ी कठिनता से इन चालबाजियों से अपना पीछा छुड़ाया।

अब सब ओर से चित्त को हटाकर बड़े मनोयोग से नौकरी में समय व्यतीत होने लगा। कुछ रुपया इकट्ठा करने के विचार से, कुछ कमीशन इत्यादि का प्रबन्ध कर लेता था। इस प्रकार पिताजी का थोड़ा सा भार बंटाया। सबसे छोटी बहन का विवाह नहीं हुआ था। पिताजी के सामर्थ्य के बाहर था कि उस बहन का विवाह किसी भले घर में कर सकते। मैंने रुपया जमा करके बहन का विवाह एक अच्छे जमींदार के यहां कर दिया। पिताजी का भार उतर गया। अब केवल माता, पिता, दादी तथा छोटे भाई थे, जिनके भोजन का प्रबन्ध होना अधिक कठिन काम न था। अब माता जी की उत्कट इच्छा हुई कि मैं भी विवाह कर लूँ। कई अच्छे-अच्छे विवाह-सम्बन्ध के सुयोग एकत्रित हुए। किन्तु मैं विचारता था कि जब तक पर्याप्त धन पास न हो, विवाह-बन्धन में फंसना ठीक नहीं। मैंने स्वतन्त्र कार्य आरम्भ किया, नौकरी छोड़ दी। एक मित्र ने सहायता दी। मैंने रेशमी कपड़ा बुनने का एक निजी कारखाना खोल दिया। बड़े मनोयोग तथा परिश्रम से कार्य किया। परमात्मा की दया से अच्छी सफलता हुई। एक-डेढ़ साल में ही मेरा कारखाना चमक गया। तीन-चार हजार की पूंजी से कार्य आरम्भ किया था। एक साल बाद सब खर्च निकालकर लगभग दो हजार रुपये का लाभ हुआ। मेरा उत्साह और भी बढ़ा। मैंने एक दो व्यवसाय और भी प्रारम्भ किए। उसी समय मालूम हुआ कि संयुक्त प्रान्त के क्रान्तिकारी दल का पुनर्संगठन हो रहा है। कार्यारम्भ हो गया है। मैंने भी योग देने का वचन दिया, किन्तु उस समय मैं अपने व्यवसाय में बुरी तरह फंसा हुआ था। मैंने छः मास का समय लिया कि छः मास में मैं अपने व्यवसाय को अपने साथी को सौंप दूंगा, और अपने आपको उसमें से निकाल लूंगा, तब स्वतन्त्रतापूर्वक क्रान्तिकारी कार्य में योग दे सकूंगा। छः मास तक मैंने अपने कारखानों का सब काम साफ करके अपने साझी को सब काम समझा दिया, तत्पश्चात् अपने वचनानुसार कार्य में योग देने का उद्योग किया।

चतुर्थ खंड

वृहत् संगठन

यद्यपि मैं अपना निश्चय कर चुका था कि अब इस प्रकार के कार्यों में कोई भाग न लूँगा, तथापि मुझे पुनः क्रान्तिकारी आन्दोलन में हाथ डालना पड़ा, जिसका कारण यह था कि मेरी तृष्णा न बुझी थी, मेरे दिल के अरमान न निकले थे। असहयोग आन्दोलन शिथिल हो चुका था। पूर्ण आशा थी कि जितने देश के नवयुवक उस आन्दोलन में भाग लेते थे, उनमें अधिकतर क्रान्तिकारी आन्दोलन में सहायता देंगे और पूरी लगन से काम करेंगे। जब कार्य आरम्भ हो गया और असहयोगियों को टटोला तो वे आन्दोलन से कहीं अधिक शिथिल हो चुके थे। उनकी आशाओं पर पानी फिर चुका था। निज की पूंजी समाप्त हो चुकी थी। घर में व्रत हो रहे थे। आगे की भी कोई विशेष आशा न थी। कांग्रेस में भी स्वराज्य दल का जोर हो गया था। जिनके पास कुछ धन तथा इष्ट मित्रों का संगठन था, वे कौंसिलों तथा असेंबली के सदस्य बन गये। ऐसी अवस्था में यदि क्रान्तिकारी संगठनकर्ताओं के पास पर्याप्त धन होता तो वे असहयोगियों को हाथ में लेकर उनसे काम ले सकते थे। कितना भी सच्चा काम करने वाला हो, किन्तु पेट तो सबके हैं। दिनभर में थोड़ा सा अन्न क्षुधा निवृत्ति के लिए मिलना परमावश्यक है। फिर शरीर ढ़कने की भी आवश्यकता होती है। अतएव कुछ प्रबन्ध तो ऐसा होना चाहिए, जिसमें नित की आवश्यकताएं पूरी हो जाएं। जितने धनी-मानी स्वदेश-प्रेमी थे उन्होंने असहयोग आन्दोलन में पूर्ण सहायता दी थी। फिर भी कुछ ऐसे कृपालु सज्जन थे, जो थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता देते थे। किन्तु प्रान्त भर के प्रत्येक जिले में संगठन करने का विचार था। पुलिस की दृष्टि से बचाने के लिए भी पूर्ण प्रयत्न करना पड़ता था। ऐसी परिस्थिति में साधारण नियमों को काम में लाते हुए कार्य करना बड़ा कठिन था। अनेक उद्योगों के पश्चात् कुछ भी सफलता न होती थी। दो-चार जिलों में संगठनकर्ता नियत किये गये थे, जिनको कुछ मासिक गुजारा दिया जाता था। पांच-दस महीने तक तो इस प्रकार कार्य चलता रहा। बाद को जो सहायक कुछ आर्थिक सहायता देते थे, उन्होंने भी हाथ खींच लिया। अब हम लोगों की अवस्था बहुत खराब हो गई। सब कार्य-भार मेरे ही ऊपर आ चुका था। कोई भी किसी प्रकार की मदद न देता था। जहां-तहां से पृथक-पृथक जिलों में कार्य करने वाले मासिक व्यय की मांग कर रहे थे। कई मेरे पास आये भी। मैंने कुछ रुपया कर्ज लेकर उन लोगों को एक मास का खर्च दिया। कईयों पर कुछ कर्ज भी हो चुका था। मैं कर्ज न निपटा सका। एक केन्द्र के कार्यकर्त्ता को जब पर्याप्त धन न मिल सका, तो वह कार्य छोड़कर चले गये। मेरे पास क्या प्रबन्ध था, जो मैं उसकी उदर-पूर्ति कर सकता ? अद्भुत समस्या थी ! किसी तरह उन लोगों को समझाया।

थोड़े दिनों में क्रान्तिकारी पर्चे आये। सारे देश में निश्चित तिथि पर पर्चे बांटे गये। रंगून, बम्बई, लाहौर, अमृतसर, कलकत्ता तथा बंगाल के मुख्य शहरों तथा संयुक्त प्रान्त के सभी मुख्य-मुख्य जिलों में पर्याप्त संख्या में पर्चों का वितरण हुआ। भारत सरकार बड़ी सशंक हुई कि ऐसी कौन सी और इतनी बड़ी सुसंगठित समिति है, जो एक ही दिन में सारे भारतवर्ष में पर्चे बंट गये! उसी के बाद मैंने कार्यकारिणी की एक बैठक करके जो केन्द्र खाली हो गया था, उसके लिए एक महाशय को नियुक्त किया। केन्द्र में कुछ परिवर्तन भी हुआ, क्योंकि सरकार के पास संयुक्त प्रान्त के सम्बन्ध में बहुत सी सूचनाएं पहुंच चुकी थीं। भविष्य की कार्य-प्रणाली का निर्णय किया गया।

कार्यकर्त्ताओं की दुर्दशा

इस समिति के सदस्यों की बड़ी दुर्दशा थी। चने मिलना भी कठिन था। सब पर कुछ न कुछ कर्ज हो गया था। किसी के पास साबुत कपड़े तक न थे। कुछ विद्यार्थी बन कर धर्म क्षेत्रों तक में भोजन कर आते थे। चार-पांच ने अपने-अपने केन्द्र त्याग दिये। पांच सौ से अधिक रुपये मैं कर्ज लेकर व्यय कर चुका था। यह दुर्दशा देख मुझे बड़ा कष्ट होने लगा। मुझसे भी भरपेट भोजन न किया जाता था। सहायता के लिए कुछ सहानुभूति रखने वालों का द्वार खटखटाया, किन्तु कोरा उत्तर मिला। किंकर्त्तव्यविमूढ़ था। कुछ समझ में न आता था। कोमल-हृदय नवयुवक मेरे चारों ओर बैठकर कहा करते, "पण्डित जी, अब क्या करें?" मैं उनके सूखे-सूखे मुख देख बहुधा रो पड़ता कि स्वदेश सेवा का व्रत लेने के कारण फकीरों से भी बुरी दशा हो रही है! एक एक कुर्ता तथा धोती भी ऐसी नहीं थी जो साबुत होती। लंगोट बांध कर दिन व्यतीत करते थे। अंगोछे पहनकर नहाते थे, एक समय क्षेत्र में भोजन करते थे, एक समय दो-दो पैसे के सत्तू खाते थे। मैं पन्द्रह वर्ष से एक समय दूध पीता था। इन लोगों की यह दशा देखकर मुझे दूध पीने का साहस न होता था। मैं भी सबके साथ बैठ कर सत्तू खा लेता था। मैंने विचार किया कि इतने नवयुवकों के जीवन को नष्ट करके उन्हें कहां भेजा जाये। जब समिति का सदस्य बनाया था, तो लोगों ने बड़ी-बड़ी आशाएं बधाई थीं। कईयों का पढ़ना-लिखना छुड़ा कर इस काम में लगा दिया था। पहले से मुझे यह हालत मालूम होती तो मैं कदापि इस प्रकार की समिति में योग न देता। बुरा फँसा। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता था। अन्त में धैर्य धारण कर दृढ़तापूर्वक कार्य करने का निश्चय किया।

इसी बीच में बंगाल आर्डिनेंस निकला और गिरफ्तारियां हुईं। इनकी गिरफ्तारी ने यहां तक असर डाला कि

कार्यकर्त्ताओं में निष्क्रियता के भाव आ गये। क्या प्रबन्ध किया जाये, कुछ निर्णय नहीं कर सके। मैंने प्रयत्न किया कि किसी तरह एक सौ रुपया मासिक का कहीं से प्रबन्ध हो जाए। प्रत्येक केन्द्र के प्रतिनिधि से हर प्रकार से प्रार्थना की थी कि समिति के सदस्यों से कुछ सहायता लें, मासिक चन्दा वसूल करें पर किसी ने कुछ न सुनी। कुछ सज्जनों ने व्यक्तिगत प्रार्थना की कि वे अपने वेतन में से कुछ मासिक दे दिया करें। किसी ने कुछ ध्यान न दिया। सदस्य रोज मेरे द्वार पर खड़े रहते थे। पत्रों की भरमार थी कि कुछ धन का प्रबन्ध कीजिए, भूखों मर रहे हैं। दो एक को व्यवसाय में लगाने का इन्तजाम भी किया। दो चार जिलों में काम बन्द कर दिया, वहां के कार्यकर्त्ताओं से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि हम मासिक शुल्क नहीं दे सकते। यदि निर्वाह का कोई दूसरा मार्ग हो, और उस ही पर निर्भर रह कर कार्य कर सकते हो तो करो। हमसे जिस समय हो सकेगा देंगे, किन्तु मासिक वेतन देने के लिए हम बाध्य नहीं। कोई बीस रुपये कर्ज के मांगता था, कोई पचास का बिल भेजता था, और कईयों ने असन्तुष्ट होकर कार्य छोड़ दिया। मैंने भी समझ लिया - ठीक ही है, पर इतना करने पर भी गुजर न हो सकी।

अशान्त युवक दल

कुछ महानुभावों की प्रकृति होती है कि अपनी कुछ शान जमाना या अपने आप को बड़ा दिखाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, जिससे भयंकर हानियां हो जाती हैं। भोले-भाले आदमी ऐसे मनुष्यों में विश्वास करके उनमें आशातीत साहस, योग्यता तथा कार्यदक्षता की आशा करके उन पर श्रद्धा रखते हैं। किन्तु समय आने पर यह निराशा के रूप में परिणित हो जाती है। इस प्रकार के मनुष्यों की किन्हीं कारणों वश यदि प्रतिष्ठा हो गई, अथवा अनुकूल परिस्थितियों के उपस्थित हो जाने से उन्होंने किसी उच्च कार्य में योग दे दिया, तब तो फिर वे अपने आपको बड़ा भारी कार्यकर्त्ता जाहिर करते हैं। जनसाधारण भी अन्धविश्वास से उनकी बातों पर विश्वास कर लेते हैं। विशेषकर नवयुवक तो इस प्रकार के मनुष्यों के जाल में शीघ्र ही फंस जाते हैं। ऐसे ही लोग नेतागिरी की धुन में अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पकाया करते हैं। इसी कारण पृथक-पृथक दलों का निर्माण होता है। इस प्रकार के मनुष्य प्रत्येक समाज तथा प्रत्येक जाति में पाये जाते हैं। इनसे क्रान्तिकारी दल भी मुक्त नहीं रह सकता। नवयुवकों का स्वभाव चंचल होता है, वे शान्त रहकर संगठित कार्य करना बड़ा दुष्कर समझते हैं। उनके हृदय में उत्साह की उमंगें उठती हैं। वे समझते हैं दो चार अस्त्र हाथ आये कि हमने गवर्नमेंट को नाकों चने चबवा दिए। मैं भी जब क्रान्तिकारी दल में योग देने का विचार कर रहा था, उस समय मेरी उत्कण्ठा थी कि यदि एक रिवाल्वर मिल जाये तो दस बीस अंग्रेजों को मार दूं। इसी प्रकार के भाव मैंने

कई नवयुवकों में देखे। उनकी बड़ी प्रबल हार्दिक इच्छा होती है कि किसी प्रकार एक रिवाल्वर या पिस्तौल उनके हाथ लग जाये तो वे उसे अपने पास रख लें। मैंने उनसे रिवाल्वर पास रखने का लाभ पूछा, तो कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके। कई नवयुवकों को मैंने इस शौक को पूरा करने में सैंकड़ों रुपये बरबाद करते भी देखा है। किसी क्रान्तिकारी आन्दोलन के सदस्य नहीं, कोई विशेष कार्य भी नहीं, महज शौकिया रिवाल्वर पास रखेंगे। ऐसे ही थोड़े से युवकों का एक दल एक महोदय ने भी एकत्रित किया। वे सब बड़े सच्चरित्र, स्वाभिमानी और सच्चे कार्यकर्त्ता थे। इस दल ने विदेश से अस्त्र प्राप्त करने का बड़ा उत्तम सूत्र प्राप्त किया था, जिससे यथारुचि पर्याप्त अस्त्र मिल सकते थे। उन अस्त्रों के दाम भी अधिक न थे। अस्त्र भी पर्याप्त संख्या में बिलकुल नये मिलते थे। यहां तक प्रबन्ध हो गया था कि हम लोग रुपये का उचित प्रबन्ध कर देंगे, और यथा समय मूल्य निपटा दिया करेंगे, तो हमको माल उधार भी मिल जाया करेगा और हमें जब किसी प्रकार के जितनी संख्या में अस्त्रों की आवश्यकता होगी, मिल जाया करेंगे। यही नहीं, समय आने पर हम विशेष प्रकार की मशीन वाली बन्दूकें भी बनवा सकेंगे। इस समय समिति की आर्थिक अवस्था बड़ी खराब थी। इस सूत्र के हाथ लग जाने और इसके लाभ उठाने की इच्छा होने पर भी बिना रुपये के कुछ होता दिखलाई न पड़ता था। रुपये का प्रबन्ध करना नितान्त आवश्यक था। किन्तु वह हो कैसे ? दान कोई न देता था। कर्ज भी न मिलता था, और कोई उपाय न देख डाका डालना तय हुआ। किन्तु किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति (private property) पर डाका डालना हमें अभीष्ट न था। सोचा, यदि लूटना है तो सरकारी माल क्यों न लूटा जाये ? इसी उधेड़बुन में एक दिन मैं रेल में जा रहा था। गार्ड के डिब्बे के पास गाड़ी में बैठा था। स्टेशन मास्टर एक थैली लाया, और गार्ड के डिब्बे में डाल दिया। कुछ खटपट की आवाज हुई। मैंने उतर कर देखा कि एक लोहे का सन्दूक रखा है। विचार किया कि इसी में थैली डाली होगी। अगले स्टेशन पर उसमें थैली डालते भी देखा। अनुमान किया कि लोहे का सन्दूक गार्ड के डिब्बे में जंजीर से बंधा रहता होगा, ताला पड़ा रहता होगा, आवश्यकता होने पर ताला खोलकर उतार लेते होंगे। इसके थोड़े दिनों बाद लखनऊ स्टेशन पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। देखा एक गाड़ी में से कुली लोहे के, आमदनी वाले सन्दूक उतार रहे हैं। निरीक्षण करने से मालूम हुआ कि उसमें जंजीरें ताला कुछ नहीं पड़ता, यों ही रखे जाते हैं। उसी समय निश्चय किया कि इसी पर हाथ मारूंगा।

रेलवे डकैती

उसी समय से धुन सवार हुई । तुरन्त स्थान पर जो टाइम टेबुल देखकर अनुमान किया कि सहारनपुर से गाड़ी चलती है, लखनऊ तक अवश्य दस हजार रुपये की आमदनी होती होगी । सब बातें ठीक करके कार्यकर्त्ताओं का संग्रह किया । दस नवयुवकों को लेकर विचार किया कि किसी छोटे स्टेशन पर जब गाड़ी खड़ी हो, स्टेशन के तारघर पर अधिकार कर लें, और गाड़ी का सन्दूक उतार कर तोड़ डालें, जो कुछ मिले उसे लेकर चल दें । परन्तु इस कार्य में मनुष्यों की अधिक संख्या की आवश्यकता थी । इस कारण यही निश्चय किया गया कि गाड़ी की जंजीर खींचकर चलती गाड़ी को खड़ा करके तब लूटा जाये । सम्भव है कि तीसरे दर्जे की जंजीर खींचने से गाड़ी न खड़ी हो, क्योंकि तीसरे दर्जे में बहुधा प्रबन्ध ठीक नहीं रहता है । इस कारण से दूसरे दर्जे की जंजीर खींचने का प्रबन्ध किया गया । सब लोग उसी ट्रेन में सवार थे । गाड़ी खड़ी होने पर सब उतरकर गार्ड के डिब्बे के पास पहुंच गये । लोहे का सन्दूक उतारकर छेनियों से काटना चाहा, छेनियों ने काम न दिया, तब कुल्हाड़ा चला ।

मुसाफिरों से कह दिया कि सब गाड़ी में चढ़ जाओ । गाड़ी का गार्ड गाड़ी में चढ़ना चाहता था, पर उसे जमीन पर लेट जाने की आज्ञा दी, ताकि बिना गार्ड के गाड़ी न जा सके । दो आदमियों को नियुक्त किया कि वे लाइन की पगडण्डी को छोड़कर घास में खड़े होकर गाड़ी से हटे हुए गोली चलाते रहें । एक सज्जन गार्ड के डिब्बे से उतरा । उनके पास भी माउजर पिस्तौल था । विचारा कि ऐसा शुभ अवसर जाने कब हाथ आए । माउजर पिस्तौल काहे को चलाने को मिलेगा? उमंग जो आई, सीधी करके दागने लगे । मैंने जो देखा तो डांटा, क्योंकि गोली चलाने की उनकी ड्यूटी (काम) ही न थी । फिर यदि कोई मुसाफिर कौतुहलवश बाहर को सिर निकाले तो उसके गोली जरूर लग जाये ! हुआ भी ऐसा ही । जो व्यक्ति रेल से उतरकर अपनी स्त्री के पास जा रहा था, मेरा ख्याल है कि इन्हीं महाशय की गोली उसके लग गई, क्योंकि जिस समय यह महाशय सन्दूक नीचे डालकर गार्ड के डिब्बे से उतरे थे, केवल दो तीन फायर हुए थे । उसी समय स्त्री ने कोलाहल किया होगा और उसका पति उसके पास जा रहा था, जो उक्त महाशय की उमंग का शिकार हो गया ! मैंने यथाशक्ति पूर्ण प्रबन्ध किया था कि जब तक कोई बन्दूक लेकर सामना करने न आये, या मुकाबले में गोली न चले तब तक किसी आदमी पर फायर न होने पाए । मैं नर-हत्या कराके डकैती को भीषण रूप देना नहीं चाहता था । फिर भी मेरा कहा न मानकर अपना काम छोड़ गोली चला देने का यह परिणाम हुआ ! गोली चलाने की ड्यूटी

जिनको मैंने दी थी वे बड़े दक्ष तथा अनुभवी मनुष्य थे, उनसे भूल होना असम्भव है। उन लोगों को मैंने देखा कि वे अपने स्थान से पांच मिनट बाद फायर करते थे। यही मेरा आदेश था।

सन्दूक तोड़ तीन गठरियों में थैलियां बांधी। सबसे कई बार कहा, देख लो कोई सामान रह तो नहीं गया, इस पर भी एक महाशय चद्दर डाल आए! रास्ते में थैलियों से रुपया निकालकर गठरी बांधी और उसी समय लखनऊ शहर में जा पहुंचे। किसी ने पूछा भी नहीं, कौन हो, कहाँ से आये हो? इस प्रकार दस आदमियों ने एक गाड़ी को रोककर लूट लिया। उस गाड़ी में चौदह मनुष्य ऐसे थे, जिनके पास बन्दूकें या राइफलें थीं। दो अंग्रेज सशस्त्र फौजी जवान भी थे, पर सब शान्त रहे। ड्राइवर महाशय तथा एक इंजीनियर महाशय दोनों का बुरा हाल था। वे दोनों अंग्रेज थे। ड्राइवर महाशय इंजन में लेटे रहे। इंजीनियर महाशय पाखाने में जा छुपे! हमने कह दिया था कि मुसाफिरों से न बोलेंगे। सरकार का माल लूटेंगे। इस कारण मुसाफिर भी शान्तिपूर्वक बैठे रहे। समझे तीस-चालीस आदमियों ने गाड़ी को चारों ओर से घेर लिया है। केवल दस युवकों ने इतना बड़ा आतंक फैला दिया। साधारणतः इस बात पर बहुत से मनुष्य विश्वास करने में भी संकोच करेंगे कि दस नवयुवकों ने गाड़ी खड़ी करके लूट ली। जो भी हो, वास्तव में बात यही थी। इन दस कार्यकर्त्ताओं में अधिकतर तो ऐसे थे जो आयु में सिर्फ लगभग बाईस वर्ष के होंगे और जो शरीर से बड़े पुष्ट न थे। इस सफलता को देखकर मेरा साहस बढ़ गया। मेरा जो विचार था, वह अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। पुलिस वालों की वीरता का मुझे अन्दाजा था। इस घटना से भविष्य के कार्य की बहुत बड़ी आशा बन्ध गई। नवयुवकों में भी उत्साह बढ़ गया। जितना कर्जा था निपटा दिया। अस्त्रों की खरीद के लिए लगभग एक हजार रुपये भेज दिये। प्रत्येक केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं को यथास्थान भेजकर दूसरे प्रान्तों में भी कार्य-विस्तार करने का निर्णय करके कुछ प्रबन्ध किया। एक युवकदल ने बम बनाने का प्रबन्ध किया, मुझसे भी सहायता चाही। मैंने आर्थिक सहायता देकर अपना एक सदस्य भेजने का वचन दिया। किन्तु कुछ त्रुटियां हुईं जिससे सम्पूर्ण दल अस्त-व्यस्त हो गया।

मैं इस विषय में कुछ भी न जान सका कि दूसरे देश के क्रान्तिकारियों ने प्रारम्भिक अवस्था में हम लोगों की भांति प्रयत्न किया या नहीं। यदि पर्याप्त अनुभव होता तो इतनी साधारण भूलें न करते। त्रुटियों के होते हुए भी कुछ न बिगड़ता और न कुछ भेद खुलता, न इस अवस्था को पहुंचते, क्योंकि मैंने जो संगठन किया था उसमें किसी ओर से मुझे कमजोरी न दिखाई देती थी। कोई भी किसी प्रकार की त्रुटि न समझ सकता था। इसी

कारण आंख बन्द किये बैठे रहे। किन्तु आस्तीन में सांप छिपा हुआ था, ऐसा गहरा मुंह मारा कि चारों खानों चित्त कर दिया !

जिन्हें हम हार समझे थे गला अपना सजाने को,

वही अब नाग बन बैठे हमारे काट खाने को !

नवयुवकों में आपस की होड़ के कारण बहुत वितण्डा तथा कलह भी हो जाती थी, जो भयंकर रूप धारण कर लेती। मेरे पास जब मामला आता तो मैं प्रेम-पूर्वक समिति की दशा का अवलोकन कराके, सबको शान्त कर देता। कभी नेतृत्व को लेकर वाद-विवाद चल जाता। एक केन्द्र के निरीक्षक के वहाँ कार्यकर्त्ता अत्यन्त असन्तुष्ट थे। क्योंकि निरीक्षक से अनुभवहीनता के कारण कुछ भूलें हो गई थीं। यह अवस्था देख मुझे बड़ा खेद तथा आश्चर्य हुआ, क्योंकि नेतागिरि का भूत सबसे भयानक होता है। जिस समय से यह भूत खोपड़ी पर सवार होता है, उसी समय से सब काम चौपट हो जाता है। केवल एक दूसरे को दोष देखने में समय व्यतीत होता है और वैमनस्य बढ़कर बड़े भयंकर परिणामों का उत्पादक होता है। इस प्रकार के समाचार सुन मैंने सबको एकत्रित कर खूब फटकारा। सब अपनी त्रुटि समझकर पछताए और प्रीतिपूर्वक आपस में मिलकर कार्य करने लगे। पर ऐसी अवस्था हो गई थी कि दलबन्दी की नौबत आ गई थी। इस प्रकार से तो दलबन्दी हो ही गई थी। पर मुझ पर सब की श्रद्धा थी और मेरे वक्तव्य को सब मान लेते थे। सब कुछ होने पर भी मुझे किसी ओर से किसी प्रकार का सन्देह न था। किन्तु परमात्मा को ऐसा ही स्वीकार था, जो इस अवस्था का दर्शन करना पड़ा।

गिरफ्तारी

काकोरी डकैती होने के बाद से ही पुलिस बहुत सचेत हुई। बड़े जोरों के साथ जांच आरम्भ हो गई। शाहजहांपुर में कुछ नई मूर्तियों के दर्शन हुए। पुलिस के कुछ विशेष सदस्य मुझ से भी मिले। चारों ओर शहर में यही चर्चा थी कि रेलवे डकैती किसने कर ली ? उन्हीं दिनों शहर में डकैती के एक दो नोट निकल आये, अब तो पुलिस का अनुसंधान और भी बढ़ने लगा। कई मित्रों ने मुझसे कहा भी कि सतर्क रहो। दो एक सज्जनों ने

निश्चितरूपेण समाचार दिया कि मेरी गिरफ्तारी जरूर हो जाएगी। मेरी समझ में कुछ न आया। मैंने विचार किया कि यदि गिरफ्तारी हो भी गई तो पुलिस को मेरे विरुद्ध कुछ भी प्रमाण न मिल सकेगा। अपनी बुद्धिमत्ता पर कुछ अधिक विश्वास था। अपनी बुद्धि के सामने दूसरों की बुद्धि को तुच्छ समझता था। कुछ यह भी विचार था कि देश की सहानुभूति की परीक्षा की जाए। जिस देश पर हम अपना बलिदान देने को उपस्थित हैं, उस देश के वासी हमारे साथ कितनी सहानुभूति रखते हैं ? कुछ जेल का अनुभव भी प्राप्त करना था। वास्तव में, मैं काम करते करते थक गया था। भविष्य के कार्यों में अधिक नर हत्या का ध्यान करके मैं हतबुद्धि सा हो गया था। मैंने किसी के कहने की कोई भी चिन्ता न की।

रात्रि के समय ग्यारह बजे के लगभग एक मित्र के यहां से अपने घर पर गया। रास्ते में खुफिया पुलिस के सिपाहियों से भेंट हुई। कुछ विशेष रूप से उस समय भी वे देखभाल कर रहे थे। मैंने कोई चिन्ता न की और घर जाकर सो गया। प्रातःकाल चार बजने पर जगा, शौचादि से निवृत होने पर बाहर द्वार पर बन्दूक के कुन्दों का शब्द सुनाई दिया। मैं समझ गया कि पुलिस आ गई है। मैं तुरन्त ही द्वार खोलकर बाहर गया। एक पुलिस अफसर ने बढ़कर हाथ पकड़ लिया। मैं गिरफ्तार हो गया। मैं केवल एक अंगोछा पहने हुए था। पुलिस वाले को अधिक भय न था। पूछा यदि घर में कोई अस्त्र हो, तो दीजिए। मैंने कहा कोई आपत्तिजनक वस्तु घर में नहीं। उन्होंने बड़ी सज्जनता की। मेरे हथकड़ी आदि कुछ न डाली। मकान की तलाशी लेते समय एक पत्र मिल गया, जो मेरी जेब में था। कुछ होनहार कि तीन चार पत्र मैंने लिखे थे डाकखाने में डालने को भेजे, तब तक डाक निकल चुकी थी। मैंने वे सब इस ख्याल से अपने पास ही रख लिए कि डाक के बम्बे में डाल दूंगा। फिर विचार किया जैसे बम्बे में पड़े रहेंगे, वैसे जेब में पड़े हैं। मैं उन पत्रों को वापिस घर ले आया। उन्हीं में एक पत्र आपत्तिजनक था जो पुलिस के हाथ लग गया। गिरफ्तार होकर पुलिस कोतवाली पहुंचा। वहां पर खुफिया पुलिस के एक अफसर से भेंट हुई। उस समय उन्होंने कुछ ऐसी बातें की, जिन्हें मैं या एक व्यक्ति और जानता था। कोई तीसरा व्यक्ति इस प्रकार से ब्यौरेवार नहीं जान सकता था। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। किन्तु सन्देह इस कारण न हो सका कि मैं दूसरे व्यक्ति के कार्यों में अपने शरीर के समान ही विश्वास रखता था। शाहजहांपुर में जिन-जिन व्यक्तियों की गिरफ्तारी हुई, वह भी बड़ी आश्चर्यजनक प्रतीत होती थी। जिन पर कोई सन्देह भी न था, पुलिस उन्हें कैसे जान गई? दूसरे स्थानों पर क्या हुआ कुछ भी न मालूम हो सका। जेल पहुंच जाने पर मैं थोड़ा बहुत अनुमान कर सका, कि सम्भवतः दूसरे स्थानों में भी गिरफ्तारियां हुई होंगी। गिरफ्तारियों के समाचार सुनकर शहर के सभी मित्र भयभीत हो गए। किसी से इतना भी न हो सका कि जेल में हम लोगों के पास समाचार भेजने का प्रबन्ध कर देता !

जेल

जेल में पहुंचते ही खुफिया पुलिस वालों ने यह प्रबन्ध कराया कि हम सब एक दूसरे से अलग रखे जाएं, किन्तु फिर भी एक दूसरे से बातचीत हो जाती थी। यदि साधारण कैदियों के साथ रखते तब तो बातचीत का पूर्ण प्रबन्ध हो जाता, इस कारण से सबको अलग अलग तनहाई की कोठड़ियों में बन्द किया गया। यही प्रबन्ध दूसरे जिले की जेलों में भी, जहां जहां भी इस सम्बन्ध में गिरफ्तारियां हुई थी, किया गया था। अलग-अलग रखने से पुलिस को यह सुविधा होती है कि प्रत्येक से पृथक-पृथक मिलकर बातचीत करते हैं। कुछ भय दिखाते हैं, कुछ इधर-उधर की बातें करके भेद जानने का प्रयत्न करते हैं। अनुभवी लोग तो पुलिस वालों से मिलने से इन्कार ही कर देते हैं। क्योंकि उनसे मिलकर हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ भी नहीं होता। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो समाचर जानने के लिए कुछ बातचीत करते हैं। पुलिस वालों से मिलना ही क्या है। वे तो चालबाजी से बात निकालने की ही रोटी खाते हैं। उनका जीवन इसी प्रकार की बातों में व्यतीत होता है। नवयुवक दुनियादारी क्या जानें ? न वे इस प्रकार की बातें ही बना सकते हैं।

जब किसी तरह कुछ समाचार ही न मिलते तब तो जी बहुत घबड़ाता। यही पता नहीं चलता कि पुलिस क्या कर रही है, भाग्य का क्या निर्णय होगा ? जितना समय व्यतीत होता जाता था उतनी ही चिन्ता बढ़ती जाती थी। जेल-अधिकारियों से मिलकर पुलिस यह भी प्रबन्ध करा देती है कि मुलाकात करने वालों से घर के सम्बन्ध में बातचीत करें, मुकदमे के सम्बन्ध में कोई बातचीत न करे। सुविधा के लिए सबसे प्रथम यह परमावश्यक है कि एक विश्वास-पात्र वकील किया जाए जो यथासमय आकर बातचीत कर सके। वकील के लिये किसी प्रकार की रुकावट नहीं हो सकती। वकील के साथ अभियुक्त की जो बातें होती हैं, उनको कोई दूसरा सुन नहीं सकता। क्योंकि इस प्रकार का कानून है, यह अनुभव बाद में हुआ। गिरफ्तारी के बाद शाहजहांपुर के वकीलों से मिलना भी चाहा, किन्तु शाहजहांपुर में ऐसे दब्बू वकील रहते हैं जो सरकार के विरुद्ध मुकदमें में सहायता देने में हिचकते हैं।

मुझ से खुफिया पुलिस के कप्तान साहब मिले। थोड़ी सी बातें करके अपनी इच्छा प्रकट की कि मुझे सरकारी गवाह बनाना चाहते हैं। थोड़े दिनों में एक मित्र ने भयभीत होकर कि कहीं वह भी न पकड़ा जाए, बनारसीलाल से भेंट की और समझा बुझा कर उसे सरकारी गवाह बना दिया। बनारसीलाल बहुत घबराता था कि कौन सहायता देगा, सजा जरूर हो जायेगी। यदि किसी वकील से मिल लिया होता तो उसका धैर्य न

टूटता। पं० हरकरननाथ शाहजहांपुर आए, जिस समय वह अभियुक्त श्रीयुत प्रेमकृष्ण खन्ना से मिले, उस समय अभियुक्त ने पं० हरकरननाथ से बहुत कुछ कहा कि मुझ से तथा दूसरे अभियुक्तों से मिल लें। यदि वह कहा मान जाते और मिल लेते तो बनारसीदास को साहस हो जाता और वह डटा रहता। उसी रात्रि को पहले एक इन्स्पेक्टर बनारसीलाल से मिले। फिर जब मैं सो गया तब बनारसीलाल को निकाल कर ले गए। प्रातःकाल पांच बजे के करीब जब बनारसीलाल को पुकारा। पहरे पर जो कैदी था, उससे मालूम हुआ, बनारसीलाल बयान दे चुके। बनारसीलाल के सम्बन्ध में सब मित्रों ने कहा था कि इससे अवश्य धोखा होगा, पर मेरी बुद्धि में कुछ न समाया था। प्रत्येक जानकार ने बनारसीलाल के सम्बन्ध में यही भविष्यवाणी की थी कि वह आपत्ति पड़ने पर अटल न रह सकेगा। इस कारण सब ने उसे किसी प्रकार के गुप्त कार्य में लेने की मनाही की थी। अब तो जो होना था सो हो ही गया।

थोड़े दिनों बाद जिला कलक्टर मिले। कहने लगे फांसी हो जाएगी। बचना हो तो बयान दे दो। मैंने कुछ उत्तर न दिया। तत्पश्चात् खुफिया पुलिस के कप्तान साहिब मिले, बहुत सी बातें की। कई कागज दिखलाए। मैंने कुछ कुछ अन्दाजा लगाया कि कितनी दूर तक ये लोग पहुंच गये हैं। मैंने कुछ बातें बनाई, ताकि पुलिस का ध्यान दूरी की ओर चला जाये, परन्तु उन्हें तो विश्वसनीय सूत्र हाथ लग चुका था, वे बनावटी बातों पर क्यों विश्वास करते ? अन्त में उन्होंने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि यदि मैं बंगाल का सम्बन्ध बताकर कुछ बोलशेविक सम्बंध के विषय में अपना बयान दे दूं, तो वे मुझे थोड़ी सी सजा करा देंगे, और सजा के थोड़े दिनों बाद ही जेल से निकालकर इंग्लैंड भेज देंगे और पन्द्रह हजार रुपये पारितोषिक भी सरकार से दिला देंगे। मैं मन ही मन में बहुत हंसता था। अन्त में एक दिन फिर मुझ से जेल में मिलने को गुप्तचर विभाग के कप्तान साहब आये। मैंने अपनी कोठरी में से निकलने से ही इन्कार कर दिया। वह कोठरी पर आकर बहुत सी बातें करते रहे, अन्त में परेशान होकर चले गए।

शिनाख्तें कराई गईं। पुलिस को जितने आदमी मिल सके उतने आदमी लेकर शिनाख्त कराई। भाग्यवश श्री अईनुद्दीन साहब मुकदमे के मजिस्ट्रेट मुकर्रर हुए, उन्होंने जी भर के पुलिस की मदद की। शिनाख्तों में अभियुक्तों को साधारण मजिस्ट्रेटों की भांति भी सुविधाएं न दीं। दिखाने के लिए कागजी कार्रवाई खूब साफ रखी। जबान के बड़े मीठे थे। प्रत्येक अभियुक्त से बड़े तपाक से मिलते थे। बड़ी मीठी मीठी बातें करते थे। सब समझते थे कि हमसे सहानुभूति रखते हैं। कोई न समझ सका कि अन्दर ही अन्दर घाव कर रहे हैं। इतना चालाक अफसर शायद ही कोई दूसरा हो। जब तक मुकदमा उनकी अदालत में रहा, किसी को कोई शिकायत

का मौका ही न दिया। यदि कभी कोई बात हो भी जाती तो ऐसे ढंग से उसे टालने की कौशिश करते कि किसी को बुरा ही न लगता। बहुधा ऐसा भी हुआ कि खुली अदालत में अभियुक्तों से क्षमा तक मांगने में संकोच न किया। किन्तु कागजी कार्यवाही में इतने होशियार थे कि जो कुछ लिखा सदैव अभियुक्तों के विरुद्ध ! जब मामला सेशन सुपुर्द किया और आज्ञापत्र में युक्तियां दी, तब सब की आंखें खुलीं कि कितना गहरा घाव मार दिया।

मुकदमा अदालत में न आया था, उसी समय रायबरेली में बनवारी लाल की गिरफ्तारी हुई, मुझे हाल मालूम हुआ। मैंने पं० हरकरननाथ से कहा कि सब काम छोड़कर सीधे रायबरेली जाएं और बनारसीलाल से मिलें, किन्तु उन्होंने मेरी बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। मुझे बनारसीलाल पर पहले ही संदेह था, क्योंकि उसका रहन सहन इस प्रकार का था कि जो ठीक न था। जब दूसरे सदस्यों के साथ रहता तब उनसे कहा करता कि मैं जिला संगठनकर्त्ता हूं। मेरी गणना अधिकारियों में है। मेरी आज्ञा पालन किया करो। मेरे झूठे बर्तन मला करो। कुछ विलासिता-प्रिय भी था, प्रत्येक समय शीशा, कंघा तथा साबुन साथ रखता था। मुझे इससे भय भी था, किन्तु हमारे दल के एक खास आदमी का वह विश्वासपात्र रह चुका था। उन्होंने सैंकड़ों रुपये देकर उसकी सहायता की थी। इसी कारण हम लोग भी अन्त तक उसे मासिक सहायता देते रहे थे। मैंने बहुत कुछ हाथ-पैर मारे। पर कुछ भी न चली, और जिसका मुझे भय था, वही हुआ। भाड़े का टट्टू अधिक बोझ न सम्भाल सका, उसने बयान दे दिये। जब तक यह गिरफ्तार न हुआ था कुछ सदस्यों ने इसके पास जो अस्त्र थे वे मांगे, पर उसने न दिये। जिला अफसर की शान में रहा। गिरफ्तार होते ही सब शान मिट्टी में मिल गई। बनवारीलाल के बयान दे देने से पुलिस का मुकदमा बहुत कमजोर था। सब लोग चारों ओर से एकत्रित करके लखनऊ जिला जेल में रखे गए। थोड़े समय तक अलग अलग रहे, किन्तु अदालत में मुकदमा आने से पहले ही एकत्रित कर दिए गए।

मुकदमे में रुपये की जरूरत थी। अभियुक्तों के पास क्या था ? उनके लिए धन-संग्रह करना दुष्कर था। न जाने किस प्रकार निर्वाह करते थे। अधिकतर अभियुक्तों का कोई सम्बन्धी पैरवी भी न कर सकता था। जिस किसी के कोई था भी, वह बाल बच्चों तथा घर को सम्भालता या इतने समय तक घर-बार छोड़कर मुकदमा करता ? यदि चार अच्छे पैरवी करने वाले होते तो पुलिस का तीन-चौथाई मुकदमा टूट जाता। लखनऊ जैसे जनाने शहर में मुकदमा हुआ, जहां अदालत में कोई भी शहर का आदमी न आता था ! इतना भी तो न हुआ कि

एक अच्छा प्रेस-रिपोर्टर ही रहता, जो मुकदमे की सारी कार्यवाही को, जो कुछ अदालत में होता था, प्रेस में भेजता रहता ! इण्डियन डेली टेलीग्राफ वालों ने कृपा की । यदि कोई अच्छा रिपोर्टर आ भी गया, और जो कुछ अदालत की कार्यवाही ठीक ठीक प्रकाशित की गई तो पुलिस वालों ने जज साहब से मिलकर तुरन्त उस रिपोर्टर को निकलवा दिया ! जनता की कोई सहानुभूति न थी । जो पुलिस के जी में आया, करती रही । इन सारी बातों को देखकर जज का साहस बढ़ गया । उसने जैसा जी चाहा सब कुछ किया । अभियुक्त चिल्लाये - 'हाय! हाय!' पर कुछ भी सुनवाई न हुई ! और बातें तो दूर, श्रीयुत दामोदरस्वरूप सेठ को पुलिस ने जेल में सड़ा डाला । लगभग एक वर्ष तक वे जेल में तड़फते रहे । सौ पौंड से केवल छियासठ पौंड वजन रह गया । कई बार जेल में मरणासन्न हो गए । नित्य बेहोशी आ जाती थी । लगभग दस मास तक कुछ भी भोजन न कर सके । जो कुछ छटांक दो छटांक दूध किसी प्रकार पेट में पहुंच जाता था, उससे इस प्रकार की विकट वेदना होती थी कि कोई उनके पास खड़ा होकर उस छटपटाने के दृश्य को देख न सकता था । एक मैडिकल बोर्ड बनाया गया, जिसमें तीन डाक्टर थे । उनकी कुछ समझ में न आया, तो कह दिया गया कि सेठजी को कोई बीमारी ही नहीं है ! जब से काकोरी षड्यंत्र के अभियुक्त जेल में एक साथ रहने लगे, तभी से उनमें एक अद्भुत परिवर्तन का समावेश हुआ, जिसका अवलोकन कर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही । जेल में सबसे बड़ी बात तो यह थी कि प्रत्येक आदमी अपनी नेतागिरी की दुहाई देता था । कोई भी बड़े-छोटे का भेद न रहा । बड़े तथा अनुभवी पुरुषों की बातों की अवहेलना होने लगी । अनुशासन का नाम भी न रहा । बहुधा उल्टे जवाब मिलने लगे । छोटी-छोटी बातों पर मतभेद हो जाता । इस प्रकार का मतभेद कभी कभी वैमनस्य तक का रूप धारण कर लेता । आपस में झगड़ा भी हो जाता । खैर ! जहां चार बर्तन रहते हैं, वहां खटकते ही हैं । ये लोग तो मनुष्य देहधारी थे । परन्तु लीडरी की धुन ने पार्टीबन्दी का ख्याल पैदा कर दिया । जो युवक जेल के बाहर अपने से बड़ों की आज्ञा को वेद-वाक्य के समान मानते थे, वे ही उन लोगों का तिरस्कार तक करने लगे ! इसी प्रकार आपस का वाद-विवाद कभी-कभी भयंकर रूप धारण कर लिया करता । प्रान्तीय प्रश्न छिड़ जाता । बंगाली तथा संयुक्त प्रान्त वासियों के कार्य की आलोचना होने लगती । इसमें कोई सन्देह नहीं कि बंगाल ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में दूसरे प्रान्तों से अधिक कार्य किया है, किन्तु बंगालियों की हालत यह है कि जिस किसी कार्यालय या दफ्तर में एक भी बंगाली पहुंच जाएगा, थोड़े ही दिनों में उस कार्यालय या दफ्तर में बंगाली ही बंगाली दिखाई देंगे ! जिस शहर में बंगाली रहते हैं उनकी बस्ती अलग ही बसती है । बोली भी अलग । खानपान भी अलग । जेल में यही सब अनुभव हुआ ।

जिन महानुभावों को मैं त्याग की मूर्ति समझता था, उनके अन्दर भी बंगालीपने का भाव देखा । मैंने जेल से

बाहर कभी स्वप्न में भी यह विचार न किया था कि क्रान्तिकारी दल के सदस्यों में भी प्रान्तीयता के भावों का समावेश होगा। मैं तो यही समझता रहा कि क्रान्तिकारी तो समस्त भारतवर्ष को स्वतन्त्र कराने का प्रयत्न कर रहे हैं, उनका किसी प्रान्त विशेष से क्या सम्बन्ध ? परन्तु साक्षात् देख लिया कि प्रत्येक बंगाली के दिमाग में कविवर रवीन्द्रनाथ का गीत 'आमर सोनार बांगला आमि तोमाके भालोवासी' (मेरे सोने के बंगाल, मैं तुझसे मुहब्बत करता हूँ) ठूंस-ठूंस कर भरा था, जिसका उनके नैमित्तिक जीवन में पग-पग पर प्रकाश होता था। अनेक प्रयत्न करने पर भी जेल के बाहर इस प्रकार का अनुभव कदापि न प्राप्त हो सकता था।

बड़ी भयंकर से भयंकर आपत्ति में भी मेरे मुख से आह न निकली, प्रिय सहोदर का देहान्त होने पर भी आंख से आंसू न गिरा, किन्तु इस दल के कुछ व्यक्ति ऐसे थे, जिनकी आज्ञा को मैं संसार में सब से श्रेष्ठ मानता था जिनकी जरा सी कड़ी दृष्टि भी मैं सहन न कर सकता था, जिनके कटु वचनों के कारण मेरे हृदय पर चोट लगती थी और अश्रुओं का स्रोत उबल पड़ता था। मेरी इस अवस्था को देखकर दो चार मित्रों को जो मेरी प्रकृति को जानते थे, बड़ा आश्चर्य होता था। लिखते हुए हृदय कम्पित होता है कि उन्हीं सज्जनों में बंगाली तथा अबंगाली का भाव इस प्रकार भरा था कि बंगालियों की बड़ी से बड़ी भूल, हठधर्मी तथा भीरुता की अवहेलना की गई। यह देखकर अन्य पुरुषों का साहस बढ़ता था, नित्य नई चालें चली जाती थीं। आपस में ही एक दूसरे के विरुद्ध षड्यंत्र रचे जाते थे ! बंगालियों का न्याय-अन्याय सब सहन कर लिया जाता था। इन सारी बातों ने मेरे हृदय को टूक टूक कर डाला। सब कृत्यों को देख मैं मन ही मन घुटा करता।

एक बार विचार हुआ कि सरकार से समझौता कर लिया जाए। बैरिस्टर साहब ने खुफिया पुलिस के कप्तान से परामर्श आरम्भ किया। किन्तु यह सोचकर कि इससे क्रान्तिकारी दल की निष्ठा न मिट जाए, यह विचार छोड़ दिया गया। युवकवृन्द की सम्मति हुई कि अनशन व्रत करके सरकार से हवालाती की हालत में ही मांगें पूरी करा ली जाएं क्योंकि लम्बी-लम्बी सजाएं होंगी। संयुक्त प्रान्त की जेलों में साधारण कैदियों का भोजन खाते हुए सजा काटकर जेल से जिन्दा निकलना कोई सरल कार्य नहीं। जितने राजनैतिक कैदी षड्यन्त्रों के सम्बन्ध में सजा पाकर इस प्रान्त की जेलों में रखे गए, उनमें से पांच-छः महात्माओं ने इस प्रान्त की जेलों के व्यवहार के कारण ही जेलों में प्राण त्याग दिये !

इस विचार के अनुसार काकोरी के लगभग सब हवालातियों ने अनशन व्रत आरम्भ कर दिया। दूसरे ही दिन सब पृथक कर दिये गए। कुछ व्यक्ति डिस्ट्रिक्ट जेल में रखे गए, कुछ सेण्ट्रल जेल भेजे गए। अनशन करते पन्द्रह दिवस बीत गए, तब सरकार के कान पर भी जूं रेंगी। उधर सरकार का काफी नुकसान हो रहा था। जज साहब तथा दूसरे कचहरी के कार्यकर्त्ताओं को घर बैठे वेतन देना पड़ता था। सरकार को स्वयं चिन्ता थी कि किसी प्रकार अनशन छूटे। जेल अधिकारियों ने पहले आठ आने रोज तय किये। मैंने उस समझौते को अस्वीकार कर दिया और बड़ी कठिनता से दस आने रोज पर ले आया। उस अनशन व्रत में पन्द्रह दिवस तक मैंने जल पीकर निर्वाह किया था। सोलहवें दिन नाक से दूध पिलाया गया था। श्रीयुत रोशनसिंह जी ने भी इसी प्रकार मेरा साथ दिया था। वे पन्द्रह दिन तक बराबर चलते-फिरते रहे थे। स्नानादि करके अपने नैमित्तिक कर्म भी कर लिया करते थे। दस दिन तक मेरे मुख को देखकर अनजान पुरुष यह अनुमान भी नहीं कर सकता था कि मैं अन्न नहीं खाता।

समझौते के जिन खुफिया पुलिस के अधिकारियों से मुख्य नेता महोदय का वार्तालाप बहुधा एकान्त में हुआ करता था, समझौते की बात खत्म होने जाने पर भी आप उन लोगों से मिलते रहे ! मैंने कुछ विशेष ध्यान न दिया। यदा कदा दो एक बात से पता चलता कि समझौते के अतिरिक्त कुछ दूसरी बातें भी होती हैं। मैंने इच्छा प्रकट की कि मैं भी एक समय सी० आई० डी० के कप्तान से मिलूं, क्योंकि मुझसे पुलिस बहुत असन्तुष्ट थी। मुझे पुलिस से न मिलने दिया गया। परिणामस्वरूप सी० आई० डी० वाले मेरे दुश्मन हो गए। सब मेरे व्यवहार की ही शिकायत किया करते। पुलिस अधिकारियों से बातचीत करके मुख्य नेता महोदय को कुछ आशा बंध गई। आपका जेल से निकलने का उत्साह जाता रहा। जेल से निकलने के उद्योग में जो उत्साह था, वह बहुत ढ़ीला हो गया। नवयुवकों की श्रद्धा को मुझ से हटाने के लिए अनेकों प्रकार की बातें की जाने लगीं। मुख्य नेता महोदय ने स्वयं कुछ कार्यकर्त्ताओं से मेरे सम्बन्ध में कहा कि ये कुछ रुपये खा गए। मैंने एक एक पैसे का हिसाब रखा था। जैसे ही मैंने इस प्रकार की बातें सुनीं, मैंने कार्यकारिणी के सदस्यों के सामने रखकर हिसाब देना चाहा, और अपने विरुद्ध आक्षेप करने वाले को दण्ड देने का प्रस्ताव उपस्थित किया। अब तो बंगालियों का साहस न हुआ कि मुझ से हिसाब समझें। मेरे आचरण पर भी आक्षेप किये गए।

जिस दिन सफाई की बहस मैंने समाप्त की, सरकारी वकील ने उठकर मुक्त कण्ठ से मेरी बहस की प्रशंसा की कि आपने सैंकड़ों वकीलों से अच्छी बहस की। मैंने नमस्कार कर उत्तर दिया कि आपके चरणों की कृपा है,

क्योंकि इस मुकदमे के पहले मैंने किसी अदालत में समय न व्यतीत किया था, सरकारी तथा सफाई के वकीलों की जिरह सुन कर मैंने भी साहस किया था। इसके बाद जब से पहले मुख्य नेता महाशय के विषय में सरकारी वकील ने बहस करनी शुरू की। खूब ही आड़े हाथों लिया तो मुख्य नेता महाशय का बुरा हाल था, क्योंकि उन्हें आशा थी कि सम्भव है सबूत की कमी से वे छूट जाएं या अधिक से अधिक पांच या दस वर्ष की सजा हो जाए। आखिर चैन न पड़ी। सी० आई० डी० अफसरों को बुला कर जेल में उनसे एकान्त में डेढ़ घण्टे तक बातें हुई। युवक मण्डल को इसका पता चला। सब मिलकर मेरे पास आये। कहने लगे, इस समय सी० आई० डी० अफसर से क्यों मुलाकात की जा रही है ? मेरी जिज्ञासा पर उत्तर मिला कि सजा होने के बाद जेल में क्या व्यवहार होगा, इस सम्बन्ध में बातचीत कर रहे हैं। मुझे सन्तोष न हुआ। दो या तीन दिन बाद मुख्य नेता महाशय एकान्त में बैठ कर कई घंटे तक कुछ लिखते रहे। लिखकर कागज जेब में रख भोजन करने गए। मेरी अन्तरात्मा ने कहा, ' उठ, देख तो क्या हो रहा है?' मैंने जेब से कागज निकाल कर पढ़े। पढ़कर शोक तथा आश्चर्य की सीमा न रही। पुलिस द्वारा सरकार को क्षमा-प्रार्थना भेजी जा रही थी। भविष्य के लिए किसी प्रकार के हिंसात्मक आन्दोलन या कार्य में भाग न लेने की प्रतिज्ञा की गई थी। Undertaking दी गई थी। मैंने मुख्य कार्यकर्त्ताओं से सब विवरण कह कर इस सब का कारण पूछा कि क्या हम लोग इस योग्य भी नहीं रहे, जो हमसे किसी प्रकार का परामर्श किया जाए ? तब उत्तर मिला कि व्यक्तिगत बात थी। मैंने बड़े जोर के साथ विरोध किया कि यह कदापि व्यक्तिगत बात नहीं हो सकती। खूब फटकार बतलाई। मेरी बातों को सुन चारों ओर खलबली मची। मुझे बड़ा क्रोध आया कि कितनी धूर्त्तता से काम लिया गया। मुझे चारों ओर से चढ़ाकर लड़ने के लिए प्रस्तुत किया गया। मेरे विरुद्ध षड्यंत्र रचे गए। मेरे ऊपर अनुचित आक्षेप किए गए, नवयुवकों के जीवन का भार लेकर लीडरी की शान झाड़ी गई और थोड़ी सी आपत्ति पड़ने पर इस प्रकार बीस-बीस वर्ष के युवकों को बड़ी-बड़ी सजाएं दिला, जेल में सड़ने को डाल कर स्वयं बंधेज से निकल जाने का प्रयत्न किया गया। धिक्कार है ऐसे जीवन को ! किन्तु सोच-समझ कर चुप रहा।

अभियोग

काकोरी में रेलवे ट्रेन लुट जाने के बाद ही पुलिस का विशेष विभाग उक्त घटना का पता लगाने के लिए तैनात किया गया। एक विशेष व्यक्ति मि० हार्टन इस विभाग के निरीक्षक थे। उन्होंने घटनास्थल तथा रेलवे पुलिस की रिपोर्टों को देख कर अनुमान किया कि सम्भव है यह कार्य क्रान्तिकारियों का हो। प्रान्त के क्रान्तिकारियों की जांच शुरू हुई। उसी समय शाहजहाँपुर में रेलवे डकैती के तीन नोट मिले। चोरी गए नोटों की संख्या सौ से अधिक थी जिनका मूल्य लगभग एक हजार रुपये के होगा। इनमें से लगभग सात सौ या आठ सौ रुपये के

मूल्य के नोट सीधे सरकार के खजाने में पहुंच गए । अतः सरकार नोटों के मामले को चुपचाप पी गई । ये नोट लिस्ट प्रकाशित होने से पूर्व ही सरकारी खजाने में पहुंच चुके थे । पुलिस का लिस्ट प्रकाशित करना व्यर्थ हुआ । सरकारी खजाने में से ही जनता के पास कुछ नोट लिस्ट प्रकाशित होने के पूर्व ही पहुंच गए थे, इस कारण वे जनता के पास निकल आये ।

उन्हीं दिनों में जिला खुफिया पुलिस को मालूम हुआ कि मैं 8, 9 तथा 10 अगस्त 1925 को शाहजहाँपुर नहीं था । अधिक जांच होने लगी । इस जांच-पड़ताल में पुलिस को मालूम हुआ कि गवर्नमेण्ट स्कूल शाहजहाँपुर के इन्दुभूषण मित्र नामी एक विद्यार्थी के पास मेरे क्रान्तिकारी दल सम्बन्धी पत्र आते हैं, जो वह मुझे दे आता है । स्कूल के हैडमास्टर द्वारा इन्दुभूषण के पास आए हुए पत्रों की नकल करा के हार्टन साहब के पास भेजी जाती रही । इन्हीं पत्रों से हार्टन साहब को मालूम हुआ कि मेरठ में प्रान्त की क्रान्तिकारी समिति की बैठक होने वाली है । उन्होंने एक सब-इंस्पेक्टर को अनाथालय में, जहां पर मीटिंग होने का पता चला था, भेजा । उन्हीं दिनों हार्टन साहब को किसी विशेष सूत्र से मालूम हुआ कि शीघ्र ही कनखल में डाका डालने का प्रबन्ध क्रान्तिकारी समिति के सदस्य कर रहे हैं, और सम्भव है कि किसी बड़े शहर में डाकखाने की आमदनी लूटी जाए । हार्टन साहब को एक सूत्र से एक पत्र मिला, जो मेरे हाथ का लिखा था । इस पत्र में सितम्बर में होने वाले श्राद्ध का जिक्र था जिसकी 13 तारीख निश्चित की गई थी । पत्र में था कि दादा का श्राद्ध नं. 1 पर 13 सितंबर को होगा, अवश्य पधारिये । मैं अनाथालय में मिलूंगा । पत्र पर 'रुद्र' के हस्ताक्षर थे ।

आगामी डकैतियों को रोकने के लिए हार्टन साहब ने प्रान्त भर में 26 सितम्बर सन् 1925 ई० को लगभग तीस मनुष्यों को गिरफ्तार किया । उन्हीं दिनों में इन्दुभूषण के पास आए हुए पत्र से पता लगा कि कुछ वस्तुएं बनारस में किसी विद्यार्थी की कोठरी में बन्द हैं । अनुमान किया गया कि सम्भव है कि वे हथियार हों । अनुसन्धान करने से हिन्दी विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी की कोठरी से दो राइफलें निकलीं । उस विद्यार्थी को कानपुर में गिरफ्तार किया गया । इन्दुभूषण ने मेरी गिरफ्तारी की सूचना एक पत्र द्वारा बनारस को भेजी । जिसके पास पत्र भेजा था, उसे पुलिस गिरफ्तार कर चुकी थी, क्योंकि उसी श्री रामनाथ पाण्डेय के पते का पत्र मेरी गिरफ्तारी के समय मेरे मकान से पाया था । रामनाथ पाण्डेय के पत्र पुलिस के पास पहुंचे थे । अतः इन्दुभूषण को गिरफ्तार किया गया । इन्दुभूषण ने दूसरे दिन अपना बयान दे दिया । गिरफ्तार किये हुए व्यक्तियों में से कुछ से मिल-मिलाकर बनारसीलाल ने भी, जो शाहजहांपुर की जेल में था, अपना बयान दे दिया और वह सरकारी गवाह बना लिया गया । यह कुछ अधिक जानता था । इसके बयान से क्रान्तिकारी पत्र

के पार्सलों का पता चला। बनारस के डाकखाने से जिन-जिन के पास पार्सल भेजे गये थे उन को पुलिस ने गिरफ्तार किया। कानपुर में गोपीनाथ ने जिस के नाम पार्सल गया था, गिरफ्तार होते ही पुलिस को बयान दे दिया और वह सरकारी गवाह बना लिया गया। इसी प्रकार रायबरेली में स्कूल के विद्यार्थी कुंवर बहादुर के पास पार्सल आया था, उसने भी गिरफ्तार होते ही बयान दे दिया और सरकारी गवाह बना लिया गया। इसके पास मनीआर्डर भी आया करते थे, क्योंकि वह बनवारीलाल का पोस्ट बाक्स (डाक पाने वाला) था। इसने बनवारीलाल के एक रिश्तेदार का पता बताया, जहां तलाशी लेने से बनवारीलाल का एक ट्रंक मिला। इस ट्रंक में एक कारतूसी पिस्तौल, एक कारतूसी फौजी रिवाल्वर तथा कुछ कारतूस पुलिस के हाथ लगे। श्री बनवारीलाल की खोज हुई। बनवारीलाल भी पकड़ लिये गए। गिरफ्तारी के थोड़े दिनों बाद ही पुलिस वाले मिले, उल्टा-सीधा सुझाया और बनवारीलाल ने भी अपना बयान दे दिया तथा इकबाली मुलजिम बनाये गए। श्रीयुत बनवारीलाल ने काकोरी डकैती में अपना सम्मिलित होना बताया था। उधर कलकत्ते में दक्षिणेश्वर में एक मकान में बम बनाने का सामान, एक बना हुआ बम, 7 रिवाल्वर, पिस्तौल तथा कुछ राजद्रोहात्मक साहित्य पकड़ा गया। इसी मकान में श्रीयुत राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी बी० ए० जो इस मुकदमें में फरार थे, गिरफ्तार हुए।

इन्दुभूषण के गिरफ्तार हो जाने के बाद उसके हैडमास्टर को एक पत्र मध्य प्रान्त से मिला, जिसे उसने हार्टन साहब के पास वैसा ही भेज दिया। इस पत्र से एक व्यक्ति मोहनलाल खत्री का चान्दा में पता चला। वहां से पुलिस ने खोज लगाकर पूना में श्रीयुत रामकृष्ण खत्री को गिरफ्तार करके लखनऊ भेजा। बनारस में भेजे हुए पार्सलों के सम्बन्ध से जबलपुर में श्रीयुत प्रणवेशकुमार चटर्जी को गिरफ्तार करके भेजा गया। कलकत्ता से श्रीयुत शचीन्द्रनाथ सान्याल, जिन्हें बनारस षड्यन्त्र से आजन्म कालेपानी की सजा हुई थी, और जिन्हें बांकुरा में 'क्रान्तिकारी' पर्चे बांटने के कारण दो वर्ष की सजा हुई थी, इस मुकदमे में लखनऊ भेजे गए। श्रीयुत योगेशचन्द्र चटर्जी बंगाल आर्डिनेंस के कैदी हजारीबाग जेल से भेजे गए। आप अक्तूबर सन् 1924 ई० में कलकत्ते में गिरफ्तार हुए थे। आपके पास दो कागज पाये गए थे, जिनमें संयुक्त प्रान्त के सब जिलों का नाम था, और लिखा था कि बाईस जिलों में समिति का कार्य हो रहा है। ये कागज इस षड्यन्त्र के सम्बन्ध के समझे गए। श्रीयुत राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी दक्षिणेश्वर बम केस में दस वर्ष की दीपान्तर की सजा पाने के बाद इस मुकदमे में लखनऊ भेजे गए। अब लगभग छत्तीस मनुष्य गिरफ्तार हुए थे। अट्ठाईस पर मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा चला। तीन व्यक्ति 1. श्रीयुत शचीन्द्रनाथ बख्शी, 2. श्रीयुत चन्द्रशेखर आजाद, 3. श्रीयुत अशफाकउल्ला खां फरार रहे। बाकी सब मुकदमा अदालत में आने से पहले छोड़ दिए गए। अट्ठाईस में से दो

पर से मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा उठा लिया गया। दो को सरकारी गवाह बनाकर उन्हें माफी दी गई। अन्त में मजिस्ट्रेट ने इक्कीस व्यक्तियों को सेशन सुपुर्द किया। सेशन में मुकदमा आने पर श्रीयुत दामोदरस्वरूप सेठ बहुत बीमार हो गए। अदालत न आ सकते थे, अतः अन्त में बीस व्यक्ति रह गए। बीस में से दो व्यक्ति श्रीयुत शचीन्द्रनाथ विश्वास तथा श्रीयुत हरगोविन्द सेशन की अदालत से मुक्त हुए। बाकी अठारह की सजाएं हुई।

श्री बनवारीलाल इकबाली मुलजिम हो गए थे। रायबरेली जिला कांग्रेस कमेटी के मन्त्री भी रह चुके हैं। उन्होंने असहयोग आन्दोलन में 6 मास का कारावास भी भोगा था। इस पर भी पुलिस की धमकी से प्राण संकट में पड़ गए। आप ही हमारी समिति के ऐसे सदस्य थे कि जिन पर समिति का सब से अधिक धन व्यय किया गया। प्रत्येक मास आपको पर्याप्त धन भेजा जाता था। मर्यादा की रक्षा के लिए हम लोग यथाशक्ति बनवारीलाल को मासिक शुल्क दिया करते थे। अपने पेट काट कर इनका मासिक व्यय दिया गया। फिर भी इन्होंने अपने सहायकों की गर्दन पर छुरी चलाई ! अधिक से अधिक दस वर्ष की सजा हो जाती। जिस प्रकार सबूत इनके विरुद्ध था, वैसे ही, इसी प्रकार के दूसरे अभियुक्तों पर था, जिन्हें दस-दस वर्ष की सजा हुई। यही नहीं, पुलिस के बहकाने से सेशन में बयान देते समय जो नई बातें इन्होंने जोड़ी, उनमें मेरे सम्बन्ध में कहा कि रामप्रसाद डकैतियों के रुपये से अपने परिवार का निर्वाह करता है ! इस बात को सुनकर मुझे हंसी भी आई, पर हृदय पर बड़ा आघात लगा कि जिनकी उदर पूर्ति के लिए प्राणों को संकट में डाला, दिन को दिन और रात को रात न समझा, बुरी तरह से मार खाई, माता-पिता का कुछ भी ख्याल न किया, वही इस प्रकार आक्षेप करें।

समिति के सदस्यों ने इस प्रकार का व्यवहार किया। बाहर जो साधारण जीवन के सहयोगी थे, उन्होंने भी अद्भुत रूप धारण किया। एक ठाकुर साहब के पास काकोरी डकैती का नोट मिल गया था। वह कहीं शहर में पा गए थे। जब गिरफ्तारी हुई, मजिस्ट्रेट के यहां जमानत नामंजूर हुई, जज साहब ने चार हजार की जमानत मांगी। कोई जमानती न मिलता था। आपके वृद्ध भाई मेरे पास आये। पैरों पर सिर रखकर रोने लगे। मैंने जमानत कराने का प्रयत्न किया। मेरे माता-पिता कचहरी जाकर, खुले रूप से पैरवी करने को मना करते रहे कि पुलिस खिलाफ है, रिपोर्ट हो जाएगी, पर मैंने एक न सुनी। कचहरी जाकर, कौशिश करके जमानत दाखिल कराई। जेल से उन्हें स्वयं जाकर छुड़ाया। पर जब मैंने उक्त महाशय का नाम उक्त घटना की गवाही

देने के लिए सूचित किया, तब पुलिस ने उन्हें धमकाया और उन्होंने पुलिस को तीन बार लिख कर दे दिया कि हम रामप्रसाद को जानते भी नहीं ! हिन्दू-मुस्लिम झगड़े में जिनके घरों की रक्षा की थी, जिन के बाल-बच्चे मेरे सहारे मुहल्ले में निर्भयता से निवास करते रहे, उन्होंने ही मेरे खिलाफ झूठ गवाहियां बनवाकर भेजी ! कुछ मित्रों के भरोसे पर उनका नाम गवाही में दिया कि जरूर गवाही देंगे। संसार लौट जाए पर ये नहीं डिग सकते। पर वचन दे चुकने पर भी जब पुलिस का दबाव पड़ा, वे भी गवाही देने से इन्कार कर गए ! जिनको अपना हृदय, सहोदर तथा मित्र समझ कर हर तरह की सेवा करने को तैयार रहता था, जिस प्रकार की आवश्यकता होती यथाशक्ति उनको पूर्ण करने की प्राणपण से चेष्टा करता था, उनसे इतना भी न हुआ कि कभी जेल पर आकर दर्शन दे जाते, फांसी की कोठरी में ही आकर संतोषदायक दो बातें कर जाते ! एक-दो सज्जनों ने इतनी कृपा तथा साहस किया कि दस मिनट के लिए अदालत में दूर खड़े होकर दर्शन दे गए। यह सब इसलिये कि पुलिस का आतंक छाया हुआ था कि गिरफ्तार न कर लिये जाएं। इस पर भी जिसने जो कुछ किया मैं उसी को अपना सौभाग्य समझता हूँ, और उनका आभारी हूँ।

वह फूल चढ़ाते हैं, तुर्बत भी दबी जाती।

माशूक के थोड़े से भी एहसान बहुत हैं।

परमात्मा से यही प्रार्थना है कि सब प्रसन्न तथा सुखी रहें। मैंने तो सब बातों को जानकर ही इस मार्ग पर पैर रखा था। मुकदमे के पहले संसार का कोई अनुभव ही न था। न कभी जेल देखी, न किसी अदालत का कोई तजुर्बा था। जेल में जाकर मालूम हुआ कि किसी नई दुनिया में पहुंच गया। मुकदमे से पहले मैं यह भी न जानता था कि कोई लेखन-कला-विज्ञान भी है, इसका कोई विशेषज्ञ (handwriting expert) भी होता है, जो लेखन शैली को देखकर लेखकों का निर्णय कर सकता है। यह भी नहीं पता था कि लेख किस प्रकार मिलाये जाते हैं, एक मनुष्य के लेख में क्या भेद होता है, क्यों भेद होता है, लिखन कला विशेषज्ञ हस्ताक्षर को प्रमाणित कर सकता है, तथा लेखक के वास्तविक लेख में तथा बनावटी लेख में भेद कर सकता है। इस प्रकार का कोई भी अनुभव तथा ज्ञान न रखते हुए भी एक प्रान्त की क्रान्तिकारी समिति का सम्पूर्ण भार लेकर उसका संचालन कर रहा था। बात यह है कि क्रान्तिकारी कार्य की शिक्षा देने के लिए कोई पाठशाला तो है ही नहीं।

यही हो सकता था कि पुराने अनुभवी क्रान्तिकारियों से कुछ सीखा जाए। न जाने कितने व्यक्ति बंगाल तथा पंजाब के षड्यन्त्रों में गिरफ्तार हुए, पर किसी ने भी यह उद्योग न किया कि एक इस प्रकार की पुस्तक लिखी जाए, जिससे नवागन्तुकों को कुछ अनुभव की बातें मालूम होतीं।

लोगों को इस बात की बड़ी उत्कण्ठा होगी कि क्या यह पुलिस का भाग्य ही था, जो सब बना बनाया मामला हाथ आ गया। क्या पुलिस वाले परोक्ष ज्ञानी होते हैं? कैसे गुप्त बातों का पता चला लेते हैं? कहना पड़ता है कि यह इस देश का दुर्भाग्य! सरकार का सौभाग्य!! बंगाल पुलिस के सम्बन्ध में तो अधिक कहा नहीं जा सकता, क्योंकि मेरा कुछ विशेषानुभव नहीं। इस प्रान्त की खुफिया पुलिस वाले तो महान् भौंदू होते हैं, जिन्हें साधारण ज्ञान भी नहीं होता। साधारण पुलिस से खुफिया में आते हैं। साधारण पुलिस की दरोगाई करते हैं, मजे में लम्बी-लम्बी घूस खाकर बड़े बड़े पेट बढ़ा आराम करते हैं। उनकी बला तकलीफ उठाए! यदि कोई एक-दो चालाक हुए भी तो थोड़े दिन बड़े औहदे की फिराक में काम दिखाया, दौड़-धूप की, कुछ पद-वृद्धि हो गई और सब काम बन्द! इस प्रान्त में कोई बाकायदा पुलिस का गुप्तचर विभाग नहीं, जिसको नियमित रूप से शिक्षा दी जाती हो। फिर काम करते करते अनुभव हो ही जाता है। मैनपुरी षड्यन्त्र तथा इस षड्यन्त्र से इसका पूरा पता लग गया, कि थोड़ी सी कुशलता से कार्य करने पर पुलिस के लिए पता पाना बड़ा कठिन है। वास्तव में उनके कुछ भाग्य ही अच्छे होते हैं। जब से इस मुकदमे की जांच शुरू हुई, पुलिस ने इस प्रान्त के संदिग्ध क्रान्तिकारी व्यक्तियों पर दृष्टि डाली, उनसे मिली, बातचीत की। एक दो को कुछ धमकी दी। 'चोर की दाढ़ी में तिनका' वाली जनश्रुति के अनुसार एक महाशय से पुलिस को सारा भेद मालूम हो गया। हम सब के सब चक्कर में थे कि इतनी जल्दी पुलिस ने मामले का पता कैसे लगा लिया! उक्त महाशय की ओर तो ध्यान भी न जा सकता था। पर गिरफ्तारी के समय मुझसे तथा पुलिस के अफसर से जो बातें हुईं, उनमें पुलिस अफसर ने वे सब बातें मुझ से कहीं जिनको मेरे तथा उक्त महाशय के अतिरिक्त कोई भी दूसरा जान ही न सकता था। और भी बड़े पक्के तथा बुद्धिगम्य प्रमाण मिल गए कि जिन बातों को उक्त महाशय जान सके थे, वे ही पुलिस जान सकी। जो बातें आपको मालूम न थीं, वे पुलिस को किसी प्रकार न मालूम हो सकीं। उन बातों से यह निश्चय हो गया कि यह काम उन्हीं महाशय का है। यदि ये महाशय पुलिस के हाथ न आते और भेद न खोल देते, तो पुलिस सिर पटक कर रह जाती, कुछ भी पता न चलता। बिना दृढ़ प्रमाणों के भयंकर से भयंकर व्यक्ति पर हाथ रखने का साहस नहीं होता, क्योंकि जनता में आन्दोलन फैलने से बदनामी हो जाती है।

सरकार पर जवाबदेही आती है। अधिक से अधिक दो चार मनुष्य पकड़े जाते और अन्त में उन्हें भी छोड़ना पड़ता। परन्तु जब पुलिस को वास्तविक सूत्र हाथ आ गया उसने अपनी सत्यता को प्रमाणित करने के लिए लिखा हुआ प्रमाण पुलिस को दे दिया। उस अवस्था में यदि पुलिस गिरफ्तारियां न करती तो फिर कब करती ? जो भी हुआ, परमात्मा उनका भी भला करे। अपना तो जीवन भर यही उसूल रहा।

सताये तुझको जो कोई बेवफा, 'बिस्मिल'।

तो मुंह से कुछ न कहना आह ! कर लेना॥

हम शहीदाने वफा का दीनों ईमां और है।

सिजदे करते हैं हमेशा पांव पर जल्लाद के॥

मैंने अभियोग में जो भाग लिया अथवा जिनकी जिन्दगी की जिम्मेदारी मेरे सिर पर थी, उसमें से ज्यादा हिस्सा श्रीयुत अशफाकउल्ला खां वारसी का है। मैं अपनी कलम से उनके लिए भी अन्तिम समय में दो शब्द लिख देना अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

अशफाक

मुझे भलीभांति याद है, कि जब मैं बादशाही एलान के बाद शाहजहाँपुर आया था, तो तुम से स्कूल में भेंट हुई थी। तुम्हारी मुझ से मिलने की बड़ी हार्दिक इच्छा थी। तुमने मुझसे मैनपुरी षड्यन्त्र के सम्बन्ध में कुछ बातचीत करनी चाही थी। मैंने यह समझ कर कि एक स्कूल का मुसलमान विद्यार्थी मुझ से इस प्रकार की बातचीत क्यों करता है, तुम्हारी बातों का उत्तर उपेक्षा की दृष्टि से दे दिया था।

तुम्हें उस समय बड़ा खेद हुआ था। तुम्हारे मुख से हार्दिक भावों का प्रकाश हो रहा था। तुमने अपने इरादे को यों ही नहीं छोड़ दिया, अपने निश्चय पर डटे रहे। जिस प्रकार हो सका कांग्रेस में बातचीत की। अपने इष्ट

मित्रों द्वारा इस बात का विश्वास दिलाने की कौशिश की कि तुम बनावटी आदमी नहीं, तुम्हारे दिल में मुल्क की खिदमत करने की ख्वाहिश थी। अन्त में तुम्हारी विजय हुई। तुम्हारी कौशिशों ने मेरे दिल में जगह पैदा कर ली। तुम्हारे बड़े भाई मेरे उर्दू मिडिल के सहपाठी तथा मित्र थे, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े दिनों में ही तुम मेरे छोटे भाई के समान हो गये थे, किन्तु छोटे भाई बनकर तुम्हें सन्तोष न हुआ। तुम समानता का अधिकार चाहते थे, तुम मित्र की श्रेणी में अपनी गणना चाहते थे। वही हुआ। तुम सच्चे मित्र बन गये। सब को आश्चर्य था कि एक कट्टर आर्यसमाजी और मुसलमान का मेल कैसा ? मैं मुसलमानों की शुद्धि करता था। आर्यसमाज मन्दिर में मेरा निवास था, किन्तु तुम इन बातों की किंचितमात्र चिन्ता न करते थे। मेरे कुछ साथी तुम्हें मुसलमान होने के कारण घृणा की दृष्टि से देखते थे, किन्तु तुम अपने निश्चय पर दृढ़ थे। मेरे पास आर्यसमाज मन्दिर में आते जाते थे। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा होने पर, तुम्हारे मुहल्ले के सब कोई खुल्लमखुल्ला गालियां देते थे, काफिर के नाम से पुकारते थे, पर तुम कभी भी उनके विचारों से सहमत न हुए। सदैव हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के पक्षपाती रहे। तुम एक सच्चे मुसलमान तथा सच्चे देशभक्त थे। तुम्हें यदि जीवन में कोई विचार था, तो यही कि मुसलमानों को खुदा अक्ल देता, कि वे हिन्दुओं के साथ मिल कर के हिन्दुस्तान की भलाई करते। जब मैं हिन्दी में कोई लेख या पुस्तक लिखता तो तुम सदैव यही अनुरोध करते कि उर्दू में क्यों नहीं लिखते, जो मुसलमान भी पढ़ सकें ? तुम ने स्वदेशभक्ति के भावों को भली भांति समझने के लिए ही हिन्दी का अच्छा अध्ययन किया। अपने घर पर जब माता जी तथा भ्राता जी से बातचीत करते थे, तो तुम्हारे मुंह से हिन्दी शब्द निकल जाते थे, जिससे सबको बड़ा आश्चर्य होता था।

तुम्हारी इस प्रकार की प्रवृत्ति को देखकर बहुतों को सन्देह होता था कि कहीं इस्लाम धर्म त्याग कर शुद्धि न करा ले। पर तुम्हारा हृदय तो किसी प्रकार अशुद्ध न था, फिर तुम शुद्धि किस वस्तु की कराते ? तुम्हारी इस प्रकार की प्रगति ने मेरे हृदय पर पूर्ण विजय पा ली। बहुधा मित्र मंडली में बात छिड़ती कि कहीं मुसलमान पर विश्वास करके धोखा न खाना। तुम्हारी जीत हुई, मुझमें तुममें कोई भेद न था। बहुधा मैंने तुमने एक थाली में भोजन किए। मेरे हृदय से यह विचार ही जाता रहा कि हिन्दू मुसलमान में कोई भेद है। तुम मुझ पर अटल विश्वास तथा अगाध प्रीति रखते थे। हां ! तुम मेरा नाम लेकर पुकार नहीं सकते थे। तुम सदैव 'राम' कहा करते थे। एक समय जब तुम्हारे हृदय-कम्प (Palpitation of heart) का दौरा हुआ, तुम अचेत थे, तुम्हारे मुंह से बारम्बार 'राम' 'हाय राम' शब्द निकल रहे थे। पास खड़े भाई-बांधवों को आश्चर्य था कि 'राम',

'राम' कहता है। कहते कि 'अल्लाह, अल्लाह' करो, पर तुम्हारी 'राम', 'राम' की रट थी ! उस समय किसी मित्र का आगमन हुआ, जो 'राम' के भेद को जानते थे। तुरन्त मैं बुलाया गया। मुझसे मिलने पर तुम्हें शान्ति हुई, तब सब लोग 'राम-राम' के भेद को समझे !

अन्त में इस प्रेम, प्रीति तथा मित्रता का परिणाम क्या हुआ ? मेरे विचारों के रंग में तुम भी रंग गए। तुम भी कट्टर क्रान्तिकारी बन गए। अब तो तुम्हारा दिन-रात प्रयत्न यही था कि किसी प्रकार हो मुसलमान नवयुवकों में भी क्रान्तिकारी भावों का प्रवेश हो, वे भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में योग दें। जितने तुम्हारे बन्धु तथा मित्र थे सब पर तुमने अपने विचारों का प्रभाव डालने का प्रयत्न किया। बहुधा क्रान्तिकारी सदस्यों को भी बड़ा आश्चर्य होता कि मैंने कैसे एक मुसलमान को क्रान्तिकारी दल का प्रतिष्ठित सदस्य बना लिया। मेरे साथ तुमने जो कार्य किये, वे सराहनीय हैं। तुमने कभी भी मेरी आज्ञा की अवहेलना न की। एक आज्ञाकारी भक्त के समान मेरी आज्ञा पालन में तत्पर रहते थे। तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल था। तुम भाव से बड़े उच्च थे।

मुझे यदि शान्ति है तो यही कि तुमने संसार में मेरा मुख उज्जवल कर दिया। भारत के इतिहास में यह घटना भी उल्लेखनीय हो गई कि अशफाकउल्ला ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में योग दिया। अपने भाई बन्धु तथा सम्बन्धियों के समझाने पर कुछ भी ध्यान न दिया। गिरफ्तार हो जाने पर भी अपने विचारों में दृढ़ रहे ! जैसे तुम शारीरिक बलशाली थे, वैसे ही मानसिक वीर तथा आत्मा से उच्च सिद्ध हुए। इन सबके परिणामस्वरूप अदालत में तुमको मेरा सहकारी (लेफ्टीनेंट) ठहराया गया, और जज ने मुकदमे का फैसला लिखते समय तुम्हारे गले में जयमाला (फांसी की रस्सी) पहना दी। प्यारे भाई, तुम्हें यह समझकर सन्तोष होगा कि जिसने अपने माता पिता की धन-सम्पत्ति को देश-सेवा में अर्पण करके उन्हें भिखारी बना दिया, जिसने अपने सहोदर के भावी भाग्य को भी देश-सेवा की भेंट कर दिया, जिसने अपना तन-मन-धन सर्वस्व मातृ-सेवा में अर्पण करके अपना अन्तिम बलिदान भी दे दिया, उसने अपने प्रिय सखा अशफाक को भी उसी मातृ-भूमि की भेंट चढ़ा दिया।

'असगर' हरीम इश्क में हस्ती ही जुर्म है।

रखना कभी न पांव यहां सर लिये हुए॥

फांसी की कोठरी

अन्तिम समय निकट है। दो फांसी की सजाएं सिर पर झूल रही हैं। पुलिस को साधारण जीवन में और समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं में खूब जी भर के कोसा है। खुली अदालत में जज साहब, खुफिया पुलिस के अफसर, मजिस्ट्रेट, सरकारी वकील तथा सरकार को खूब आड़े हाथों लिया है। हरेक के दिल में मेरी बातें चुभ रही हैं। कोई दोस्त आशना, अथवा मददगार नहीं, जिसका सहारा हो। एक परम पिता परमात्मा की याद है। गीता पाठ करते हुए सन्तोष है कि -

जो कुछ किया सो तैं किया, मैं कुछ कीन्हा नाहिं।

जहां कहीं कुछ मैं किया, तुम ही थे मुझ नाहिं।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः।

लिप्यते न स पापेभ्योः पद्मपत्रमिवाम्भसः॥

- भगवद्गीता/५/१०

'जो फल की इच्छा को त्याग करके कर्मों को ब्रह्म में अर्पण करके कर्म करता है, वह पाप में लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार जल में रहकर भी कमल-पत्र जल में नहीं होता।' जीवनपर्यन्त जो कुछ किया, स्वदेश की भलाई समझकर किया। यदि शरीर की पालना की तो इसी विचार से की कि सुदृढ़ शरीर से भले प्रकार स्वदेशी सेवा हो सके। बड़े प्रयत्नों से यह शुभ दिन प्राप्त हुआ। संयुक्त प्रान्त में इस तुच्छ शरीर का ही सौभाग्य होगा जो सन् 1857 ई० के गदर की घटनाओं के पश्चात् क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्बंध में इस प्रान्त के निवासी का पहला बलिदान मातृवेदी पर होगा।

सरकार की इच्छा है कि मुझे घोटकर मारे। इसी कारण इस गरमी की ऋतु में साढ़े तीन महीने बाद अपील की तारीख नियत की गई। साढ़े तीन महीने तक फांसी की कोठरी में भूंजा गया। यह कोठरी पक्षी के पिंजरे से भी खराब है। गोरखपुर जेल की फांसी की कोठरी मैदान में बनी है। किसी प्रकार की छाया निकट नहीं। प्रातःकाल आठ बजे से रात्रि के आठ बजे तक सूर्य देवता की कृपा से तथा चारों ओर रेतीली जमीन होने से अग्नि

वर्षण होता रहता है । नौ फीट लम्बी तथा नौ फीट चौड़ी कोठड़ी में केवल छः फीट लम्बा और दो फीट चौड़ा द्वार है । पीछे की ओर जमीन के आठ या नौ फीट की ऊंचाई पर एक दो फीट लम्बी तथा एक फुट चौड़ी खिड़की है । इसी कोठरी में भोजन, स्नान, मल-मूत्र त्याग तथा शयनादि होता है । मच्छर अपनी मधुर ध्वनि रात भर सुनाया करते हैं । बड़े प्रयत्न से रात्रि में तीन या चार घण्टे निद्रा आती है, किसी-किसी दिन एक-दो घण्टे ही सोकर निर्वाह करना पड़ता है । मिट्टी के पात्रों में भोजन दिया जाता है । ओढ़ने बिछाने के दो कम्बल हैं । बड़े त्याग का जीवन है । साधन के सब साधन एकत्रित हैं । प्रत्येक क्षण शिक्षा दे रहा है - अन्तिम समय के लिए तैयार हो जाओ, परमात्मा का भजन करो ।

मुझे तो इस कोठरी में बड़ा आनन्द आ रहा है । मेरी इच्छा थी कि किसी साधु की गुफा पर कुछ दिन निवास करके योगाभ्यास किया जाता । अन्तिम समय वह इच्छा भी पूर्ण हो गई । साधु की गुफा न मिली तो क्या, साधना की गुफा तो मिल गई । इसी कोठरी में यह सुयोग प्राप्त हो गया कि अपनी कुछ अन्तिम बात लिखकर देशवासियों को अर्पण कर दूं । सम्भव है कि मेरे जीवन के अध्ययन से किसी आत्मा का भला हो जाए । बड़ी कठिनता से यह शुभ अवसर प्राप्त हुआ ।

महसूस हो रहे हैं बादे फना के झोंके |

खुलने लगे हैं मुझ पर असरार जिन्दगी के ॥

बारे अलम उठाया रंगे निशात देता ।

आये नहीं हैं यूं ही अन्दाज बेहिसी के ॥

वफा पर दिल को सदके जान को नजरे जफ़ा कर दे ।

मुहब्बत में यह लाजिम है कि जो कुछ हो फिदा कर दे ॥

अब तो यही इच्छा है -

बहे बहरे फ़ना में जल्द या रब लाश 'बिस्मिल' की ।

कि भूखी मछलियां हैं जौहरे शमशीर कातिल की ॥

समझकर कूँकना इसकी ज़रा ऐ दागे नाकामी ।

बहुत से घर भी हैं आबाद इस उजड़े हुए दिल से ॥

परिणाम

ग्यारह वर्ष पर्यन्त यथाशक्ति प्राणपण से चेष्टा करने पर भी हम अपने उद्देश्य में कहां तक सफल हुए ? क्या लाभ हुआ ? इसका विचार करने से कुछ अधिक प्रयोजन सिद्ध न होगा, क्योंकि हमने लाभ हानि अथवा जय-पराजय के विचार से क्रान्तिकारी दल में योग नहीं दिया था । हमने जो कुछ किया वह अपना कर्त्तव्य समझकर किया । कर्त्तव्य-निर्णय में हमने कहां तक बुद्धिमत्ता से काम लिया, इसका विवेचन करना उचित जान पड़ता है । राजनैतिक दृष्टि से हमारे कार्यों का इतना ही मूल्य है कि कतिपय होनहार नवयुवकों के जीवन को कष्टमय बनाकर नीरस कर दिया, और उन्हीं में से कुछ ने व्यर्थ में जान गंवाई । कुछ धन भी खर्च किया । हिन्दू-शास्त्र के अनुसार किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती, जिसका जिस विधि से जो काल होता है, वह उसकी विधि समय पर ही प्राण त्याग करता है । केवल निमित्त-मात्र कारण उपस्थित हो जाते हैं । लाखों भारतवासी महामारी, हैजा, ताऊन इत्यादि अनेक प्रकार के रोगों से मर जाते हैं । करोड़ों दुर्भिक्ष में अन्न बिना प्राण त्यागते हैं, तो उसका उत्तरदायित्व किस पर है ? रह गया धन का व्यय, सो इतना धन तो भले आदमियों के विवाहोत्सवों में व्यय हो जाता है । गण्यमान व्यक्तियों की तो विलासिता की सामग्री का मासिक व्यय इतना होगा, जितना कि हमने एक षड्यन्त्र के निर्माण में व्यय किया । हम लोगों को डाकू बताकर फांसी और काले पानी की सजाएं दी गई हैं । किन्तु हम समझते हैं कि वकील और डॉक्टर हमसे कहीं बड़े डाकू हैं । वकील-डॉक्टर दिन-दहाड़े बड़े बड़े तालुकेदारों की जायदादें लूट कर खा गए । वकीलों के चाटे हुए अवध के तालुकेदारों को ढूंढे रास्ता भी दिखाई नहीं देता और वकीलों की ऊंची अट्टालिकाएं उन पर खिलखिला कर हंस रही हैं । इसी प्रकार लखनऊ में डॉक्टरों के भी ऊंचे-ऊंचे महल बन गए । किन्तु राज्य में दिन के डाकुओं की प्रतिष्ठा है । अन्यथा रात के साधारण डाकुओं और दिन के इन डाकुओं (वकीलों और डॉक्टरों) में कोई भेद नहीं । दोनों अपने अपने मतलब के लिए बुद्धि की कुशलता से प्रजा का धन लूटते हैं ।

ऐतिहासिक दृष्टि से हम लोगों के कार्य का बहुत बड़ा मूल्य है । जिस प्रकार भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि गिरी हुई अवस्था में भी भारतवासी युवकों के हृदय में स्वाधीन होने के भाव विराजमान हैं । वे स्वतन्त्र

होने की यथाशक्ति चेष्टा भी करते हैं। यदि परिस्थितियां अनुकूल होतीं तो यही इने-गिने नवयुवक अपने प्रयत्नों से संसार को चकित कर देते। उस समय भारतवासियों को भी फ्रांसीसियों की भांति कहने का सौभाग्य प्राप्त होता जो कि उस जाति के नवयुवकों ने फ्रांसीसी प्रजातन्त्र की स्थापना करते हुए कहा था - The monument so raised may serve as a lesson to the oppressors and an instance to the oppressed. अर्थात् स्वाधीनता का जो स्मारक निर्माण किया गया है वह अत्याचारियों के लिए शिक्षा का कार्य करे और अत्याचार पीड़ितों के लिए उदाहरण बने।

गाजी मुस्तफा कमालपाशा जिस समय तुर्की से भागे थे उस समय केवल इक्कीस युवक उनके साथ थे। कोई साजो-सामान न था, मौत का वारण्ट पीछे-पीछे घूम रहा था। पर समय ने ऐसा पलटा खाया कि उसी कमाल ने अपने कमाल से संसार को आश्चर्यान्वित कर दिया। वही कातिल कमालपाशा टर्की का भाग्य निर्माता बन गया। महामना लेनिन को एक दिन शराब के पीपों में छिप कर भागना पड़ा था, नहीं तो मृत्यु में कुछ देर न थी। वही महात्मा लेनिन रूस के भाग्य विधाता बने। श्री शिवाजी डाकू और लुटेरे समझे जाते थे, पर समय आया जब कि हिन्दू जाति ने उन्हें अपना सिरमौर बनाया, गौर, ब्राह्मण-रक्षक छत्रपति शिवाजी बना दिया! भारत सरकार को भी अपने स्वार्थ के लिए छत्रपति के स्मारक निर्माण कराने पड़े। क्लाइव एक उद्दण्ड विद्यार्थी था, जो अपने जीवन से निराश हो चुका था। समय के फेर ने उसी उद्दण्ड विद्यार्थी को अंग्रेज जाति का राज्य स्थापन कर्त्ता लार्ड क्लाइव बना दिया। श्री सुनयात सेन चीन के अराजकवादी पलातक (भागे हुए) थे। समय ने ही उसी पलातक को चीनी प्रजातन्त्र का सभापति बना दिया। सफलता ही मनुष्य के भाग्य का निर्माण करती है। असफल होने पर उसी को बर्बर डाकू, अराजक, राजद्रोही तथा हत्यारे के नामों से विभूषित किया जाता है। सफलता उन्हीं नामों को बदल कर दयालु, प्रजापालक, न्यायकारी, प्रजातन्त्रवादी तथा महात्मा बना देती है।

भारतवर्ष के इतिहास में हमारे प्रयत्नों का उल्लेख करना ही पड़ेगा किन्तु इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि भारतवर्ष की राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक किसी प्रकार की परिस्थिति इस समय क्रान्तिकारी आन्दोलन के पक्ष में नहीं है। इसका कारण यही है कि भारतवासियों में शिक्षा का अभाव है। वे साधारण से साधारण सामाजिक उन्नति करने में भी असमर्थ हैं। फिर राजनैतिक क्रान्ति की बात कौन कहे ? राजनैतिक क्रान्ति के लिए सर्वप्रथम क्रान्तिकारियों का संगठन ऐसा होना चाहिए कि अनेक विघ्न तथा बाधाओं के उपस्थित होने पर भी संगठन में किसी प्रकार त्रुटि न आये। सब कार्य यथावत् चलते रहें। कार्यकर्त्ता इतने

योग्य तथा पर्याप्त संख्या में होने चाहिएं कि एक की अनुपस्थिति में दूसरा स्थानपूर्ति के लिए सदा उद्यत रहे। भारतवर्ष में कई बार कितने ही षड्यन्त्रों का भण्डा फूट गया और सब किया कराया काम चौपट हो गया। जब क्रान्तिकारी दलों की यह अवस्था है तो फिर क्रान्ति के लिए उद्योग कौन करे ! देशवासी इतने शिक्षित हों कि वे वर्तमान सरकार की नीति को समझकर अपने हानि-लाभ को जानने में समर्थ हो सकें। वे यह भी पूर्णतया समझते हों कि वर्तमान सरकार को हटाना आवश्यक है या नहीं। साथ ही साथ उनमें इतनी बुद्धि भी होनी चाहिये कि किस रीति से सरकार को हटाया जा सकता है ? क्रान्तिकारी दल क्या है ? वह क्या करना चाहता है ? क्यों करना चाहता है ? इन सारी बातों को जनता की अधिक संख्या समझ सके, क्रान्तिकारियों के साथ जनता की पूर्ण सहानुभूति हो, तब कहीं क्रान्तिकारी दल को देश में पैर रखने का स्थान मिल सकता है। यह तो क्रान्तिकारी दल की स्थापना की प्रारम्भिक बातें हैं। रह गई क्रान्ति, सो वह तो बहुत दूर की बात है।

क्रान्ति का नाम ही बड़ा भयंकर है। प्रत्येक प्रकार की क्रान्ति विपक्षियों को भयभीत कर देती है। जहां पर रात्रि होती है तो दिन का आगमन जान निशिचरों को दुःख होता है। ठंडे जलवायु में रहने वाले पशु-पक्षी गरमी के आने पर उस देश को भी त्याग देते हैं। फिर राजनैतिक क्रान्ति तो बड़ी भयावनी होती है। मनुष्य अभ्यासों का समूह है। अभ्यासों के अनुसार ही उसकी प्रकृति भी बन जाती है। उसके विपरीत जिस समय कोई बाधा उपस्थित होती है, तो उनको भय प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सरकार के सहायक अमीर और जमींदार होते हैं। ये लोग कभी नहीं चाहते कि उनके ऐशो आराम में किसी प्रकार की बाधा पड़े। इसलिए वे हमेशा क्रान्तिकारी आन्दोलन को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। यदि किसी प्रकार दूसरे देशों की सहायता लेकर, समय पाकर क्रान्तिकारी दल क्रान्ति के उद्योगों में सफल हो जाये, देश में क्रान्ति हो जाए तो भी योग्य नेता न होने से अराजकता फैलकर व्यर्थ की नरहत्या होती है, और उस प्रयत्न में अनेकों सुयोग्य वीरों तथा विद्वानों का नाश हो जाता है। इसका ज्वलन्त उदाहरण सन् 1857 ई० का गदर है। यदि फ्रांस तथा अमरीका की भांति क्रान्ति द्वारा राजतन्त्र को पलट कर प्रजातंत्र स्थापित भी कर लिया जाए तो बड़े-बड़े धनी पुरुष अपने धन, बल से सब प्रकार के अधिकारियों को दबा बैठते हैं। कार्यकारिणी समितियों में बड़े-बड़े अधिकार धनियों को प्राप्त हो जाते हैं। देश के शासन में धनियों का मत ही उच्च आदर पाता है। धन बल से देश के समाचार पत्रों, कल कारखानों तथा खानों पर उनका ही अधिकार हो जाता है। मजबूरन जनता की अधिक संख्या धनिकों का समर्थन करने को बाध्य हो जाती है। जो दिमाग वाले होते हैं, वे भी समय पाकर बुद्धिबल से जनता की खरी कमाई से प्राप्त किए अधिकारों को हड़प कर बैठते हैं। स्वार्थ के वशीभूत होकर वे श्रमजीवियों तथा कृषकों को उन्नति का अवसर नहीं देते। अन्त में ये लोग भी धनिकों के पक्षपाती होकर राजतन्त्र के स्थान में धनिकतन्त्र की ही स्थापना करते हैं। रूसी क्रान्ति के पश्चात् यही हुआ था। रूस के

क्रान्तिकारी इस बात को पहले से ही जानते थे । अतःएव उन्होंने राज्यसत्ता के विरुद्ध युद्ध करके राजतन्त्र की समाप्ति की । इसके बाद जैसे ही धनी तथा बुद्धिजीवियों ने रोड़ा अटकाना चाहा कि उसी समय उनसे भी युद्ध करके उन्होंने वास्तविक प्रजातन्त्र की स्थापना की ।

अब विचारने की बात यह है कि भारतवर्ष में क्रान्तिकारी आन्दोलन के समर्थक कौन-कौन से साधन मौजूद हैं ? पूर्व पृष्ठों में मैंने अपने अनुभवों का उल्लेख करके दिखला दिया है कि समिति के सदस्यों की उदर-पूर्ति तक के लिए कितना कष्ट उठाना पड़ा । प्राणपण से चेष्टा करने पर भी असहयोग आन्दोलन के पश्चात् कुछ थोड़े से ही गिने चुने युवक युक्तप्रान्त में ऐसे मिल सके, जो क्रान्तिकारी आन्दोलन का समर्थन करके सहायता देने को उद्यत हुए । इन गिने-चुने व्यक्तियों में भी हार्दिक सहानुभूति रखने वाले, अपनी जान पर खेल जाने वाले कितने थे, उसका कहना ही क्या है ! कैसे बड़ी-बड़ी आशाएं बांधकर इन व्यक्तियों को क्रान्तिकारी समिति का सदस्य बनाया गया था, और इस अवस्था में, जब कि असहयोगियों ने सरकार की ओर से घृणा उत्पन्न कराने में कोई कसर न छोड़ी थी, खुले रूप में राजद्रोही बातों का पूर्ण प्रचार किया गया था । इस पर भी बोलशेविक सहायता की आशाएं बंधा बंधाकर तथा क्रान्तिकारियों के ऊँचे-ऊँचे आदर्शों तथा बलिदानों का उदाहरण दे देकर प्रोत्साहन दिया जाता था । नवयुवकों के हृदय में क्रान्तिकारियों के प्रति बड़ा प्रेम तथा श्रद्धा होती है । उनकी अस्त्र-शस्त्र रखने की स्वाभाविक इच्छा तथा रिवाल्वर या पिस्तौल से प्राकृतिक प्रेम उन्हें क्रान्तिकारी दल से सहानुभूति उत्पन्न करा देता है । मैंने अपने क्रान्तिकारी जीवन में एक भी युवक ऐसा न देखा, जो एक रिवाल्वर या पिस्तौल अपने पास रखने की इच्छा न रखता हो । जिस समय उन्हें रिवाल्वर के दर्शन होते, वे समझते कि ईष्टदेव के दर्शन प्राप्त हुए, आधा जीवन सफल हो गया ! उसी समय से वे समझते हैं कि क्रान्तिकारी दल के पास इस प्रकार के सहस्रों अस्त्र होंगे, तभी तो इतनी बड़ी सरकार से युद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं ! सोचते हैं कि धन की भी कोई कमी न होगी ! अब क्या, अब समिति के व्यय से देश-भ्रमण का अवसर भी प्राप्त होगा, बड़े-बड़े त्यागी महात्माओं के दर्शन होंगे, सरकारी गुप्तचर विभाग का भी हाल मालूम हो सकेगा, सरकार द्वारा जब्त किताबें कुछ तो पहले ही पढ़ा दी जाती हैं, रही सही की भी आशा रहती है कि बड़ा उच्च साहित्य देखने को मिलेगा, जो यों कभी प्राप्त नहीं हो सकता । साथ ही साथ ख्याल होता है कि क्रान्तिकारियों ने देश के राजा महाराजाओं को तो अपने पक्ष में कर ही लिया होगा ! अब क्या, थोड़े दिन की ही कसर है, लौटा दिया सरकार का राज्य ! बम बनाना सीख ही जाएंगे ! अमर बूटी प्राप्त हो जाएगी, इत्यादि । परन्तु जैसे ही एक युवक क्रान्तिकारी दल का सदस्य बनकर हार्दिक प्रेम से समिति के कार्यों में योग देता है,

थोड़े दिनों में ही उसे विशेष सदस्य होने के अधिकार प्राप्त होते हैं, वह ऐक्टिव (कार्यशील) मेंम्बर बनता है, उसे संस्था का कुछ असली भेद मालूम होता है, तब समझ में आता है कि कैसे भीषण कार्य में उसने हाथ डाला है। फिर तो वही दशा हो जाती है जो 'नकटा पंथ' के सदस्यों की थी। जब चारों ओर से असफलता तथा अविश्वास की घटाएं दिखाई देती हैं, तब यही विचार होता है कि ऐसे दुर्गम पथ में ये परिणाम तो होते ही हैं। दूसरे देश के क्रानिकारियों के मार्ग में भी ऐसी ही बाधाएं उपस्थित हुई होंगी। वीर वही कहलाता है जो अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ता, इसी प्रकार की बातों से मन को शान्त किया जाता है। भारत के जनसाधारण की तो कोई बात ही नहीं। अधिकांश शिक्षित समुदाय भी यह नहीं जानता कि क्रान्तिकारी दल क्या चीज है, फिर उनसे सहानुभूति कौन रखे ? बिना देशवासियों की सहानुभूति के अथवा बिना जनता की आवाज के सरकार भी किसी बात की कुछ चिन्ता नहीं करती। दो-चार पढ़े लिखे एक दो अंग्रेजी अखबार में दबे हुए शब्दों में यदि दो एक लेख लिख दें तो वे अरण्यरोदन के समान निष्फल सिद्ध होते हैं। उनकी ध्वनि व्यर्थ में ही आकाश में विलीन हो जाती है। तमाम बातों को देखकर अब तो मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि अच्छा हुआ था जो मैं गिरफ्तार हो गया और भागा नहीं, भागने की मुझे सुविधाएं थीं। गिरफ्तारी से पहले ही मुझे अपनी गिरफ्तारी का पूरा पता चल गया था। गिरफ्तारी के पूर्व भी यदि इच्छा करता तो पुलिस वालों को मेरी हवा न मिलती, किन्तु मुझे तो अपने शक्ति की परीक्षा करनी थी। गिरफ्तारी के बाद सड़क पर आध घण्टे तक बिना किसी बंधन के खुला हुआ बैठा था। केवल एक सिपाही निगरानी के लिए पास बैठा हुआ था, जो रात भर का जागा था। सब पुलिस अफसर भी रात भर के जगे हुए थे, क्योंकि गिरफ्तारियों में लगे रहे थे। सब आराम करने चले गए थे। निगरानी वाला सिपाही भी घोर निद्रा में सो गया ! दफ्तर में केवल एक मुन्शी लिखा पढ़ी कर रहे थे। यह भी श्रीयुत रोशनसिंह अभियुक्त के फूफीजात भाई थे। यदि मैं चाहता तो धीरे से उठकर चल देता। पर मैंने विचारा कि मुन्शी जी महाशय बुरे फंसेंगे। मैंने मुंशी जी को बुलाकर कहा कि यदि भावी आपत्ति के लिए तैयारी हो तो मैं जाऊं। वे मुझे पहले से जानते थे। पैरों पड़ गए कि गिरफ्तार हो जाऊँगा, बाल बच्चे भूखे मर जायेंगे। मुझे दया आ गई। एक घण्टे बाद श्री अशफाकउल्ला खां के मकान की कारतूसी बन्दूक और कारतूसों से भरी हुई पेटी लाकर उन्हीं मुंशी जी के पास रख दी गई, और मैं पास ही कुर्सी पर खुला हुआ बैठा था। केवल एक सिपाही खाली हाथ पास में खड़ा था। इच्छा हुई कि बन्दूक उठाकर कारतूसों की पेटी को गले में डाल लूं, फिर कौन सामने आता है ! पर फिर सोचा कि मुंशी जी पर आपत्ति आएगी, विश्वासघात करना ठीक नहीं। उस समय खुफिया पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेंट सामने छत पर आये। उन्होंने देखा कि मेरे एक ओर कारतूस तथा बन्दूक पड़ी है, दूसरी ओर श्रीयुत प्रेमकृष्ण का माऊजर पिस्तौल तथा कारतूस रखे हैं, क्योंकि ये सब चीजें मुंशी जी के पास आकर जमा होती थीं और मैं बिना किसी बंधन के बीच

में खुला हुआ बैठा हूं। डि० सु० को तुरन्त सन्देह हुआ, उन्होंने बन्दूक तथा पिस्तौल को वहां से हटवाकर मालखाने में बन्द करवाया। निश्चय किया कि अब भाग चलूं। पाखाने के बहाने से बाहर निकल गया। एक सिपाही कोतवाली से बाहर दूसरे स्थान में शौच के निमित्त लिवा लाया। दूसरे सिपाहियों ने उससे बहुत कहा कि रस्सी डाल लो। उसने कहा मुझे विश्वास है यह भागेंगे नहीं। पाखाना नितान्त निर्जन स्थान में था। मुझे पाखाना भेजकर वह सिपाही खड़ा होकर सामने कुश्ती देखने में मस्त है! हाथ बढ़ाते ही दीवार के ऊपर और एक क्षण में बाहर हो जाता, फिर मुझे कौन पाता? किन्तु तुरन्त विचार आया कि जिस सिपाही ने विश्वास करके तुम्हें इतनी स्वतन्त्रता दी, उसके साथ विश्वासघात करके भागकर उसको जेल में डालोगे? क्या यह अच्छा होगा? उसके बाल-बच्चे क्या कहेंगे? इस भाव ने हृदय पर एक ठोकर लगाई। एक ठंडी सांस भरी, दीवार से उतरकर बाहर आया, सिपाही महोदय को साथ लेकर कोतवाली की हवालात में आकर बन्द हो गया।

लखनऊ जेल में काकोरी के अभियुक्तों को बड़ी भारी आजादी थी। राय साहब पं० चम्पालाल जेलर की कृपा से हम कभी न समझ सके कि जेल में हैं या किसी रिश्तेदार के यहाँ मेहमानी कर रहे हैं। जैसे माता-पिता से छोटे-छोटे लड़के बात बात पर ऐंठ जाते। पं० चम्पालाल जी का ऐसा हृदय था कि वे हम लोगों से अपनी संतान से भी अधिक प्रेम करते थे। हम में से किसी को जरा सा कष्ट होता था, तो उन्हें बड़ा दुःख होता था। हमारे तनिक से कष्ट को भी वह स्वयं न देख सकते थे। और हम लोग ही क्यों, उनकी जेल में किसी कैदी या सिपाही, जमादार या मुन्शी - किसी को भी कोई कष्ट नहीं। सब बड़े प्रसन्न रहते थे। इसके अतिरिक्त मेरी दिनचर्या तथा नियमों का पालन देखकर पहले के सिपाही अपने गुरु से भी अधिक मेरा सम्मान करते थे। मैं यथानियम जाड़े, गर्मी तथा बरसात में प्रातःकाल तीन बजे से उठकर संध्यादि से निवृत हो नित्य हवन भी करता था। प्रत्येक पहरे का सिपाही देवता के समान मेरी पूजा करता था। यदि किसी के बाल बच्चे को कष्ट होता था तो वह हवन की भभूत ले जाता था! कोई जंत्र मांगता था। उनके विश्वास के कारण उन्हें आराम भी होता था तथा उनकी श्रद्धा और भी बढ़ जाती थी। परिणाम स्वरूप जेल से निकल जाने का पूरा प्रबन्ध कर लिया। जिस समय चाहता चुपचाप निकल जाता। एक रात्रि को तैयार होकर उठ खड़ा हुआ। बैरक के नम्बरदार तो मेरे सहारे पहरा देते थे। जब जी में आता सोते, जब इच्छा होती बैठ जाते, क्योंकि वे जानते थे कि यदि सिपाही या जमादार सुपरिण्टेंडेंट जेल के सामने पेश करना चाहेंगे, तो मैं बचा लूंगा। सिपाही तो कोई चिन्ता ही न करते थे। चारों ओर शान्ति थी। केवल इतना प्रयत्न करना था कि लोहे की कटी हुई सलाखों को उठाकर बाहर हो जाऊं। चार महीने पहले से लोहे की सलाखें काट ली थीं। काटकर वे ऐसे ढंग से जमा दी थीं

कि सलाखें धोई गई, रंगत लगवाई गई, तीसरे दिन झाड़ी जाती, आठवें दिन हथोड़े से ठोकी जातीं और जेल के अधिकारी नित्य प्रति सायंकाल घूमकर सब ओर दृष्टि डाल जाते थे, पर किसी को कोई पता न चला ! जैसे ही मैं जेल से भागने का विचार करके उठा था, ध्यान आया कि जिन पं० चम्पालाल की कृपा से सब प्रकार के आनन्द भोगने की स्वतन्त्रता जेल में प्राप्त हुई, उनके बुढ़ापे में जबकि थोड़ा सा समय ही उनकी पेंशन के लिए बाकी है, क्या उन्हीं के साथ विश्वासघात करके निकल भागूं ? सोचा जीवन भर किसी के साथ विश्वासघात न किया । अब भी विश्वासघात न करूंगा । उस समय मुझे यह भली भांति मालूम हो चुका था कि मुझे फांसी की सजा होगी, पर उपरोक्त बात सोचकर भागना स्थगित ही कर दिया । ये सब बातें चाहे प्रलाप ही क्यों न मालूम हों, किन्तु सब अक्षरशः सत्य हैं, सबके प्रमाण विद्यमान हैं ।

मैं इस समय इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि यदि हम लोगों ने प्राणपण से जनता को शिक्षित बनाने में पूर्ण प्रयत्न किया होता, तो हमारा उद्योग क्रान्तिकारी आन्दोलन के कहीं अधिक लाभदायक होता, जिसका परिणाम स्थायी होता । अति उत्तम होगा यदि भारत की भावी सन्तान तथा नवयुवकवृन्द क्रान्तिकारी संगठन करने की अपेक्षा जनता की प्रवृत्ति को देश सेवा की ओर लगाने का प्रयत्न करें और श्रमजीवी तथा कृषकों का संगठन करके उनको जमींदारों तथा रईसों के अत्याचारों से बचाएं । भारतवर्ष के रईस तथा जमींदार सरकार के पक्षपाती हैं । मध्य श्रेणी के लोग किसी न किसी प्रकार इन्हीं तीनों के आश्रित हैं । कोई तो नौकरपेशा हैं और जो कोई व्यवसाय भी करते हैं, उन्हें भी इन्हीं के मुंह की ओर ताकना पड़ता है । रह गये श्रमजीवी तथा कृषक, सो उनको उदरपूर्ति के उद्योग से ही समय नहीं मिलता जो धर्म, समाज तथा राजनीति के ओर कुछ ध्यान दे सकें । मद्यपानादि दुर्व्यसनों के कारण उनका आचरण भी ठीक नहीं रह जाता । व्यभिचार, सन्तान वृद्धि, अल्पायु में मृत्यु तथा अनेक प्रकार के रोगों से जीवन भर उनकी मुक्ति नहीं हो सकती । कृषकों में उद्योग का तो नाम भी नहीं पाया जाता । यदि एक किसान को जमींदार की मजदूरी करने या हल चलाने की नौकरी करने पर ग्राम में आज से बीस वर्ष पूर्व दो आने रोज या चार रुपये मासिक मिलते थे, तो आज भी वही वेतन बंधा चला आ रहा है ! बीस वर्ष पूर्व वह अकेला था, अब उसकी स्त्री तथा चार सन्तान भी हैं पर उसी वेतन में उसे निर्वाह करना पड़ता है । उसे उसी पर सन्तोष करना पड़ता है । सारे दिन जेठ की लू तथा धूप में गन्ने के खेत में पाने देते उसको रतौन्धी आने लगती है । अंधेरा होते ही आंख से दिखाई नहीं देता, पर उसके बदले में आधा सेर सड़े हुए शीरे का शरबत या आधा सेर चना तथा छः पैसे रोज मजदूरी मिलती है, जिसमें ही उसे अपने परिवार का पेट पालना पड़ता है ।

जिनके हृदय में भारतवर्ष की सेवा के भाव उपस्थित हों या जो भारतभूमि को स्वतंत्र देखने या स्वाधीन बनाने की इच्छा रखता हो, उसे उचित है कि ग्रामीण संगठन करके कृषकों की दशा सुधारकर, उनके हृदय से भाग्य-निर्माता को हटाकर उद्योगी बनने की शिक्षा दे। कल कारखाने, रेलवे, जहाज तथा खानों में जहां कहीं श्रमजीवी हों, उनकी दशा को सुधारने के लिए श्रमजीवियों के संघ की स्थापना की जाए, ताकि उनको अपनी अवस्था का ज्ञान हो सके और कारखानों के मालिक मनमाने अत्याचार न कर सकें और अछूतों को, जिनकी संख्या इस देश में लगभग छः करोड़ है, पर्याप्त शिक्षा प्राप्त कराने का प्रबन्ध हो तथा उनको सामाजिक अधिकारों में समानता मिले। जिस देश में छः करोड़ मनुष्य अछूत समझे जाते हों, उस देश के वासियों को स्वाधीन बनने का अधिकार ही क्या है ? इसी के साथ ही साथ स्त्रियों की दशा भी इतनी सुधारी जाए कि वे अपने आपको मनुष्य जाति का अंग समझने लगें। वे पैर की जूती तथा घर की गुड़िया न समझी जाएं। इतने कार्य हो जाने के बाद जब भारत की जनता अधिकांश शिक्षित हो जाएगी, वे अपनी भलाई बुराई समझने के योग्य हो जाएंगे, उस समय प्रत्येक आन्दोलन जिसका शिक्षित जनता समर्थन करेगी, अवश्य सफल होगा। संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति भी उसको दबाने में समर्थ न हो सकेगी। रूस में जब तक किसान संगठन नहीं हुआ, रूस सरकार की ओर से देश सेवकों पर मनमाने अत्याचार होते रहे। जिस समय से 'केथेराइन' ने ग्रामीण संगठन का कार्य अपने हाथ में लिया, स्थान-स्थान पर कृषक सुधारक संघों की स्थापना की, घूम घूम कर रूस के युवक तथा युवतियों ने जारशाही के विरुद्ध प्रचार आरम्भ किया, तभी से किसानों को अपनी वास्तविक अवस्था का ज्ञान होने लगा और वे अपने मित्र तथा शत्रु को समझने लगे, उसी समय से जारशाही की नींव हिलने लगी। श्रमजीवियों के संघ भी स्थापित हुए। रूस में हड़तालों का आरम्भ हुआ। उसी समय से जनता की प्रवृत्ति को देखकर मदान्धों के नेत्र खुल गए।

भारतवर्ष में सबसे बड़ी कमी यही है कि इस देश के युवकों में शहरी जीवन व्यतीत करने की बान पड़ गई है। युवक-वृन्द साफ-सुथरे कपड़े पहनने, पक्की सड़कों पर चलने, मीठा, खट्टा तथा चटपटा भोजन करने, विदेशी सामग्री से सुसज्जित बाजारों में घूमने, मेज-कुर्सी पर बैठने तथा विलासिता में फंसे रहने के आदी हो गए हैं। ग्रामीण जीवन को वे नितान्त नीरस तथा शुष्क समझते हैं। उनकी समझ में ग्रामों में अर्धसभ्य या जंगली लोग निवास करते हैं। यदि कभी किसी अंग्रेजी स्कूल या कालेज में पढ़ने वाला विद्यार्थी किसी कार्यवश अपने किसी सम्बन्धी के यहां ग्राम में पहुंच जाता है, तो उसे वहां दो चार दिन काटना बड़ा कठिन हो जाता है। या तो कोई

उपन्यास साथ ले जाता है, जिसे अलग बैठे पढ़ा करता है, या पड़े-पड़े सोया करता है ! किसी ग्रामवासी से बातचीत करने से उसका दिमाग थक जाता है, या उससे बातचीत करना वह अपनी शान के खिलाफ समझता है। ग्रामवासी जमींदार या रईस जो अपने लड़कों को अंग्रेजी पढ़ाते हैं, उनकी भी यही इच्छा रहती है कि जिस प्रकार हो सके उनके लड़के कोई सरकारी नौकरी पा जाएं। ग्रामीण बालक जिस समय शहर में पहुंचकर शहरी शान को देखते हैं, इतनी बुरी तरह से उन पर फैशन का भूत सवार हो जाता है कि उनके मुकाबले फैशन बनाने की चिन्ता किसी को भी नहीं ! थोड़े दिनों में उनके आचरण पर भी इसका प्रभाव पड़ता है और वे स्कूल के गन्दे लड़कों के हाथ में पड़कर बड़ी बुरी बुरी कुटेवों के घर बन जाते हैं। उनसे जीवन-पर्यन्त अपना ही सुधार नहीं हो पाता। फिर वे ग्रामवासियों का सुधार क्या खाक कर सकेंगे ?

असहयोग आन्दोलन में कार्यकर्त्ताओं की इतनी अधिक संख्या होने पर भी सबके सब शहर के प्लेटफार्मों पर लेक्चरबाजी करना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। ऐसे बहुत थोड़े कार्यकर्त्ता थे, जिन्होंने ग्रामों में कुछ कार्य किया। उनमें भी अधिकतर ऐसे थे, जो केवल हुल्लड़ कराने में ही देशोद्धार समझते थे ! परिणाम यह हुआ कि आन्दोलन में थोड़ी सी शिथिलता आते ही सब कार्य अस्त-व्यस्त हो गया। इसी कारण महामना देशबन्धु चितरंजनदास ने अन्तिम समय में ग्राम-संगठन ही अपने जीवन का ध्येय बनाया था। मेरे विचार से ग्राम संगठन की सबसे सुगम रीति यही हो सकती है कि युवकों में शहरी जीवन छोड़कर ग्रामीण जीवन के प्रति प्रीति उत्पन्न हो। जो युवक मिडिल, एण्ट्रेन्स, एफ० ए०, बी० ए० पास करने में हजारों रुपए नष्ट करके दस, पन्द्रह, बीस या तीस रुपए की नौकरी के लिए ठोकरें खाते फिरते हैं उन्हें नौकरी का आसरा छोड़कर कई उद्योग जैसे बढ़ईगिरी, लुहारगिरी, दर्जी का काम, धोबी का काम, जूते बनाना, कपड़ा बुनना, मकान बनाना, राजगिरी इत्यादि सीख लेना चाहिए। यदि जरा साफ सुथरे रहना हो तो वैद्यक सीखें। किसी ग्राम या कस्बे में जाकर काम शुरू करें। उपरोक्त कामों में कोई काम भी ऐसा नहीं है, जिसमें चार या पांच घण्टा मेहनत करके तीस रुपये मासिक की आय न हो जाए। ग्राम में लकड़ी या कपड़ों का मूल्य बहुत कम होता है और यदि किसी जमींदार की कृपा हो गई और एक सूखा हुआ वृक्ष कटवा दिया तो छः महीने के लिए ईंधन की छुट्टी हो गई। शुद्ध घी, दूध सस्ते दामों में मिल जाता है और स्वयं एक या दो गाय या भैंस पाल ली, तब तो आम के आम गुठलियों के दाम ही मिल गये। चारा सस्ता मिलता है। घी-दूध बाल बच्चे खाते ही हैं। कंडों का ईंधन होता है और यदि किसी की कृपा हो गई तो फसल पर एक या दो भुस की गाड़ी बिना मूल्य ही मिल जाती है। अधिकतर कामकाजियों को गांव में चारा, लकड़ी के लिए पैसा खर्च नहीं करना पड़ता। हजारों अच्छे-अच्छे ग्राम हैं जिनमें वैद्य, दर्जी, धोबी निवास ही नहीं करते। उन ग्रामों के लोगों को दस, बीस कोस दूर दौड़ना

पड़ता है। वे इतने दुःखी होते हैं कि जिनका अनुमान करना कठिन है। विवाह आदि के अवसरों पर यथासमय कपड़े नहीं मिलते। काष्टादिक औषधियां बड़े बड़े कस्बों में नहीं मिलतीं। यदि मामूली अत्तार बनकर ही कस्बे में बैठ जाएं, और दो-चार किताबें देख कर ही औषध दिया करें तो भी तीस-चालीस रुपये मासिक की आय तो कहीं गई ही नहीं। इस प्रकार उदर निर्वाह तथा परिवार का प्रबन्ध हो जाता है। ग्रामों की अधिक जनसंख्या से परिचय हो जाता है। परिचय ही नहीं, जिसका एक समय जरूरत पर काम निकल गया, वह आभारी हो जाता है। उसकी आंखें नीची रहती हैं। आवश्यकता पड़ने पर वह तुरन्त सहायक होता है। ग्राम में ऐसा कौन पुरुष है जिसका लुहार, बढ़ई, धोबी, दर्जी, कुम्हार या वैद्य से काम नहीं पड़ता ? मेरा पूर्ण अनुभव है कि इन लोगों की भोले-भाले ग्रामवासी खुशामद करते रहते हैं।

रोजाना काम पड़ते रहने से और सम्बन्ध होने से यदि थोड़ी सी चेष्टा की जाए और ग्रामवासियों को थोड़ा सा उपदेश देकर उनकी दशा सुधारने का यत्न किया जाए तो बड़ी जल्दी काम बने। अल्प समय में ही वे सच्चे स्वदेश भक्त खद्दरधारी बन जाएं। यदि उनमें एक दो शिक्षित हों तो उत्साहित करके उनके पास एक समाचार पत्र मंगाने का प्रबन्ध कर दिया जाए। देश की दशा का भी उन्हें कुछ ज्ञान होता रहे। इसी तरह सरल-सरल पुस्तकों की कथाएं सुनाकर उनमें से कुप्रथाओं को भी छुड़ाया जा सकता है। कभी कभी स्वयं रामायण या भागवत की कथा भी सुनाया करें। यदि नियमित रूप से भागवत की कथा कहें तो पर्याप्त धन भी चढ़ावे में आ सकता है, जिससे एक पुस्तकालय स्थापित कर दें। कथा कहने के अवसर पर बीच बीच में चाहे कितनी राजनीति का समावेश कर जाये, कोई खुफिया पुलिस का रिपोर्टर नहीं बैठा जो रिपोर्ट करे। वैसे यदि कोई खद्दरधारी ग्राम में उपदेश करना चाहे तो तुरन्त ही जमींदार पुलिस में खबर कर दे और यदि कस्वे के वैद्य, लड़के पढ़ाने वाले अथवा कथा कहने वाले पण्डित कोई बात कहें तो सब चुपचाप सुनकर उस पर अमल करने की कौशिश करते हैं और उन्हें कोई पूछता भी नहीं। इसी प्रकार अनेक सुविधाएं मिल सकती हैं जिनके सहारे ग्रामीणों की सामाजिक दशा सुधारी जा सकती है। रात्रि-पाठशालाएं खोलकर निर्धन तथा अछूत जातियों के बालकों को शिक्षा दे सकते हैं। श्रमजीवी संघ स्थापित करने में शहरी जीवन तो व्यतीत हो सकता है, किन्तु इसके लिए उनके साथ अधिक समय खर्च करना पड़ेगा। जिस समय वे अपने अपने काम से छुट्टी पाकर आराम करते हैं, उस समय उनके साथ वार्तालाप करके मनोहर उपदेशों द्वारा उनको उनकी दशा का दिग्दर्शन कराने का अवसर मिल सकता है। इन लोगों के पास वक्त बहुत कम होता है। इसलिए बेहतर यही होगा कि चित्ताकर्षण साधनों द्वारा किसी उपदेश करने की रीति से, जैसे लालटेन द्वारा तस्वीरें दिखाकर या किसी दूसरे उपाय से उनको एक स्थान पर एकत्रित किया जा सके, तथा रात्रि पाठशालाएं खोलकर उन्हें तथा उनके बच्चों

को शिक्षा देने का भी प्रबन्ध किया जाए। जितने युवक उच्च शिक्षा प्राप्त करके व्यर्थ में धन व्यय करने की इच्छा रखते हैं, उनके लिए उचित है कि वे अधिक से अधिक अंग्रेजी के दसवें दर्जे तक की योग्यता प्राप्त कर किसी कला कौशल को सीखने का प्रयत्न करें और उस कला कौशल द्वारा ही अपना जीवन निर्वाह करें।

जो धनी-मानी स्वदेश सेवार्थ बड़े-बड़े विद्यालयों तथा पाठशालाओं की स्थापना करते हैं, उनको चाहिए कि विद्यापीठों के साथ-साथ उद्योगपीठ, शिल्पविद्यालय तथा कलाकौशल भवनों की स्थापना भी करें। इन विद्यालयों के विद्यार्थियों को नेतागिरी के लोभ से बचाया जाए। विद्यार्थियों का जीवन सादा हो और विचार उच्च हों। इन्हीं विद्यालयों में एक एक उपदेशक विभाग भी हो, जिसमें विद्यार्थी प्रचार करने का ढंग सीख सकें। जिन युवकों के हृदय में स्वदेश सेवा के भाव हों, उन्हें कष्ट सहन करने की आदत डालकर सुसंगठित रूप से ऐसा कार्य करना चाहिए, जिसका परिणाम स्थायी हो। केथेराइन ने इसी प्रकार कार्य किया था। उदर-पूर्ति के निमित्त केथेराइन के अनुयायी ग्रामों में जाकर कपड़े सीते या जूते बनाते और रात्रि के समय किसानों को उपदेश देते थे। जिस समय मैंने केथेराइन की जीवनी (The Grandmother of the Russian Revolution) का अंग्रेजी भाषा में अध्ययन किया, मुझ पर भी उसका प्रभाव हुआ। मैंने तुरन्त उसकी जीवनी 'केथेराइन-८' नाम से हिन्दी में प्रकाशित कराई। मैं भी उसी प्रकार काम करना चाहता था, पर बीच में ही क्रान्तिकारी दल में फंस गया। मेरा तो अब यह दृढ़ निश्चय हो गया है कि अभी पचास वर्ष तक क्रान्तिकारी दल को भारतवर्ष में सफलता नहीं मिल सकती क्योंकि यहां की स्थिति उसके उपयुक्त नहीं। अतःएव क्रान्तिकारी दल का संगठन करके व्यर्थ में नवयुवकों के जीवन को नष्ट करना और शक्ति का दुरुपयोग करना आदि बड़ी भारी भूलें हैं। इससे लाभ के स्थान में हानि की संभावना बहुत अधिक है। नवयुवकों को मेरा अन्तिम सन्देश यही है कि वे रिवाल्वर या पिस्तौल को अपने पास रखने की इच्छा को त्याग कर सच्चे देश सेवक बनें। पूर्ण-स्वाधीनता उनका ध्येय हो और वे वास्तविक साम्यवादी बनने का प्रयत्न करते रहें। फल की इच्छा छोड़कर सच्चे प्रेम से कार्य करें, परमात्मा सदैव उनका भला ही करेगा।

यदि देश-हित मरना पड़े मुझको सहस्रों बार भी

तो भी न मैं इस कष्ट को निज ध्यान में लाऊँ कभी।

हे ईश भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो,

कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो ॥

अन्तिम समय की बातें

आज 16 दिसम्बर 1927 ई० को निम्नलिखित पंक्तियों का उल्लेख कर रहा हूं, जबकि 19 दिसम्बर 1927 ई० सोमवार (पौष कृष्णा 11 सम्वत् 1984 वि०) को 6 बजे प्रातःकाल इस शरीर को फांसी पर लटका देने की तिथि निश्चित हो चुकी है। अतःएव नियत समय पर इहलीला संवरण करनी होगी। यह सर्वशक्तिमान प्रभु की लीला है। सब कार्य उसकी इच्छानुसार ही होते हैं। यह परमपिता परमात्मा के नियमों का परिणाम है कि किस प्रकार किसको शरीर त्यागना होता है। मृत्यु के सकल उपक्रम निमित्त मात्र हैं। जब तक कर्म क्षय नहीं होता, आत्मा को जन्म मरण के बन्धन में पड़ना ही होता है, यह शास्त्रों का निश्चय है। यद्यपि यह बात वह परब्रह्म ही जानता है कि किन कर्मों के परिणामस्वरूप कौन सा शरीर इस आत्मा को ग्रहण करना होगा किन्तु अपने लिए यह मेरा दृढ़ निश्चय है कि मैं उत्तम शरीर धारण कर नवीन शक्तियों सहित अति शीघ्र ही पुनः भारतवर्ष में ही किसी निकटवर्ती सम्बन्धी या इष्ट मित्र के गृह में जन्म ग्रहण करूंगा, क्योंकि मेरा जन्म-जन्मान्तर उद्देश्य रहेगा कि मनुष्य मात्र को सभी प्रकृति पदार्थों पर समानाधिकार प्राप्त हो। कोई किसी पर हकूमत न करे। सारे संसार में जनतन्त्र की स्थापना हो। वर्तमान समय में भारतवर्ष की अवस्था बड़ी शोचनीय है। अतःएव लगातार कई जन्म इसी देश में ग्रहण करने होंगे और जब तक कि भारतवर्ष के नर-नारी पूर्णतया सर्वरूपेण स्वतन्त्र न हो जाएं, परमात्मा से मेरी यह प्रार्थना होगी कि वह मुझे इसी देश में जन्म दे, ताकि उसकी पवित्र वाणी - 'वेद वाणी' का अनुपम घोष मनुष्य मात्र के कानों तक पहुंचाने में समर्थ हो सकूं। सम्भव है कि मैं मार्ग-निर्धारण में भूल करूं, पर इसमें मेरा कोई विशेष दोष नहीं, क्योंकि मैं भी तो अल्पज्ञ जीव मात्र ही हूं। भूल न करना केवल सर्वज्ञ से ही सम्भव है। हमें परिस्थितियों के अनुसार ही सब कार्य करने पड़े और करने होंगे। परमात्मा अगले जन्म से सुबुद्धि प्रदान करे ताकि मैं जिस मार्ग का अनुसरण करूं वह त्रुटि रहित ही हो।

अब मैं उन बातों का उल्लेख कर देना उचित समझता हूं, जो काकोरी षड्यन्त्र के अभियुक्तों के सम्बन्ध में सेशन जज के फैसला सुनाने के पश्चात घटित हुई। 6 अप्रैल सन् 1927 ई० को सेशन जज ने फैसला सुनाया था। 7 जुलाई सन् 1927 ई० को अवध चीफ कोर्ट में अपील हुई। इसमें कुछ की सजाएं बढ़ीं और एकाध की कम भी हुईं। अपील होने की तारीख से पहले मैंने संयुक्त प्रान्त के गवर्नर की सेवा में एक मेमोरियल भेजा था,

जिसमें प्रतिज्ञा की थी कि अब भविष्य में क्रान्तिकारी दल से कोई सम्बन्ध न रखूंगा। इस मेमोरियल का जिक्र मैंने अपनी अन्तिम दया-प्रार्थना पत्र में, जो मैंने चीफ कोर्ट के जजों को दिया था, कर दिया था। किन्तु चीफ कोर्ट के जजों ने मेरी किसी प्रकार की प्रार्थना स्वीकार न की। मैंने स्वयं ही जेल से अपने मुकदमे की बहस लिखकर भेजी छापी गई। जब यह बहस चीफ कोर्ट के जजों ने सुनी उन्हें बड़ा सन्देह हुआ कि बहस मेरी लिखी हुई न थी। इन तमाम बातों का नतीजा यह निकला कि चीफ कोर्ट अवध द्वारा मुझे महाभयंकर षड्यन्त्रकारी की पदवी दी गई। मेरे पश्चाताप पर जजों को विश्वास न हुआ और उन्होंने अपनी धारणा को इस प्रकार प्रकट किया कि यदि यह (रामप्रसाद) छूट गया तो फिर वही कार्य करेगा। बुद्धि की प्रखरता तथा समझ पर प्रकाश डालते हुए मुझे 'निर्दयी हत्यारे' के नाम से विभूषित किया गया। लेखनी उनके हाथ में थी, जो चाहे सो लिखते, किन्तु काकोरी षड्यन्त्र का चीफ कोर्ट का आद्योपान्त फैसला पढ़ने से भलीभांति विदित होता है कि मुझे मृत्युदण्ड किस ख्याल से दिया गया। यह निश्चय किया गया कि रामप्रसाद ने सेशन जज के विरुद्ध अपशब्द कहे हैं, खुफिया विभाग के कार्यकर्त्ताओं पर लांछन लगाये हैं अर्थात् अभियोग के समय जो अन्याय होता था, उसके विरुद्ध आवाज उठाई है, अतःएव रामप्रसाद सब से बड़ा गुस्ताख मुलजिम है। अब माफी चाहे वह किसी रूप में मांगे, नहीं दी जा सकती।

चीफ कोर्ट से अपील खारिज हो जाने के बाद यथानियम प्रान्तीय गवर्नर तथा फिर वाइसराय के पास दया प्रार्थना की गई। रामप्रसाद 'बिस्मिल', राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह तथा अशफाकउल्ला खां के मृत्यु-दण्ड को बदलकर अन्य दूसरी सजा देने की सिफारिश करते हुए संयुक्त प्रान्त की कौंसिल के लगभग सभी निर्वाचित हुए मेम्बरों ने हस्ताक्षर करके निवेदन पत्र दिया। मेरे पिता ने ढ़ाई सौ रईस, आनरेरी मजिस्ट्रेट तथा जमींदारों के हस्ताक्षर से एक अलग प्रार्थना पत्र भेजा, किन्तु श्रीमान सर विलियम मेरिस की सरकार ने एक न सुनी ! उसी समय लेजिस्लेटिव असेम्बली तथा कौंसिल ऑफ स्टेट के 78 सदस्यों ने हस्ताक्षर करके वाइसराय के पास प्रार्थनापत्र भेजा कि काकोरी षड्यन्त्र के मृत्युदण्ड पाए हुओं को मृत्युदण्ड की सजा बदल कर दूसरी सजा कर दी जाए, क्योंकि दौरा जज ने सिफारिश की है कि यदि ये लोग पश्चाताप करें तो सरकार दण्ड कम दे। चारों अभियुक्तों ने पश्चाताप प्रकट कर दिया है। किन्तु वाइसराय महोदय ने भी एक न सुनी।

इस विषय में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी ने तथा असेम्बली के कुछ अन्य सदस्यों ने वाइसराय से मिलकर भी प्रयत्न किया था कि मृत्युदण्ड न दिया जाए। इतना होने पर सबको आशा थी कि वाइसराय महोदय अवश्यमेव मृत्युदण्ड की आज्ञा रद्द कर देंगे। इसी हालत में चुपचाप विजयदशमी से दो दिन पहले

जेलों को तार भेज दिए गए कि दया नहीं होगी सब की फांसी की तारीख मुकर्रर हो गई। जब मुझे सुपरिण्टेण्डेंट जेल ने तार सुनाया, तो मैंने भी कह दिया था कि आप अपना काम कीजिए। किन्तु सुपरिण्टेण्डेंट जेल के अधिक कहने पर कि एक तार दया-प्रार्थना का सम्राट के पास भेज दो, क्योंकि यह उन्होंने एक नियम सा बना रखा है कि प्रत्येक फांसी के कैदी की ओर से जिस की भिक्षा की अर्जी वाइसराय के यहां खारिज हो जाती है, वह एक तार सम्राट के नाम से प्रान्तीय सरकार के पास अवश्य भेजते हैं। कोई दूसरा जेल सुपरिण्टेण्डेंट ऐसा नहीं करता। उपरोक्त तार लिखते समय मेरा कुछ विचार हुआ कि प्रिवी-कौंसिल इंग्लैण्ड में अपील की जाए। मैंने श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना वकील लखनऊ को सूचना दी। बाहर किसी को वाइसराय द्वारा अपील खरिज करने की बात पर विश्वास भी न हुआ। जैसे तैसे करके श्रीयुत मोहनलाल द्वारा प्रिवीकौंसिल में अपील कराई गई। नतीजा तो पहले से मालूम था। वहां से भी अपील खारिज हुई। यह जानते हुए कि अंग्रेज सरकार कुछ भी न सुनेगी मैंने सरकार को प्रतिज्ञा-पत्र क्यों लिखा ? क्यों अपीलों पर अपीलें तथा दया-प्रार्थनाएं कीं ? इस प्रकार के प्रश्न उठ सकते हैं। समझ में सदैव यही आया कि राजनीति एक शतरंज के खेल के समान है। शतरंज के खेलने वाले भली भांति जानते हैं कि आवश्यकता होने पर किस प्रकार अपने मोहरे मरवा देने पड़ते हैं। बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के छोड़ने या उन पर खुली अदालत में मुकदमा चलाने के प्रस्ताव जब असेम्बली में पेश किए, तो सरकार की ओर से बड़े जोरदार शब्दों में कहा गया कि सरकार के पास पूरा सबूत है। खुली अदालत में अभियोग चलने से गवाहों पर आपत्ति आ सकती है। यदि आर्डिनेन्स के कैदी लेखबद्ध प्रतिज्ञा-पत्र दाखिल कर दें कि वे भविष्य में क्रान्तिकारी आन्दोलन से कोई सम्बन्ध न रखेंगे, तो सरकार उन्हें रिहाई देने के विषय में विचार कर सकती है। बंगाल में दक्षिणेश्वर तथा शोभा बाजार बम केस आर्डिनेन्स के बाद चले। खुफिया विभाग के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेंट के कत्ल का मुकदमा भी खुली अदालत में हुआ, और भी कुछ हथियारों के मुकदमे खुली अदलत में चलाये गए, किन्तु कोई एक भी दुर्घटना या हत्या की सूचना पुलिस न दे सकी। काकोरी षड्यन्त्र केस पूरे डेढ़ साल तक खुली अदालतों में चलता रहा। सबूत की ओर से लगभग तीन सौ गवाह पेश किये गए। कई मुखबिर तथा इकबाली खुले तौर से घूमते रहे, पर कहीं कोई दुर्घटना या किसी को धमकी देने की कोई सूचना पुलिस ने न दी। सरकार की इन बातों की पोल खोलने की गरज से मैंने लेखबद्ध बंधेज सरकार को दिया। सरकार के कथनानुसार जिस प्रकार बंगाल आर्डिनेन्स के कैदियों के सम्बन्ध में सरकार के पास पूरा सबूत था और सरकार उनमें से अनेकों को भयंकर षड्यन्त्रकारी दल का सदस्य तथा हत्याओं का जिम्मेदार समझती तथा कहती थी, तो इसी प्रकार काकोरी षड्यन्त्रकारियों के लेखबद्ध प्रतिज्ञा करने पर कोई गौर क्यों न किया ? बात यह है कि जबरा मारे रोने न देय। मुझे तो भली भांति मालूम था कि संयुक्त प्रान्त में जितने राजनैतिक अभियोग चलाये जाते हैं, उनके फैसले खुफिया पुलिस की इच्छानुसार लिखे जाते हैं। बरेली पुलिस कांस्टेबलों की हत्या के अभियोग में नितान्त

निर्दोष नवयुवकों को फंसाया गया और सी० आई० डी० वालों ने अपनी डायरी दिखलाकर फैसला लिखाया। काकोरी षड्यन्त्र में भी अन्त में ऐसा ही हुआ। सरकार की सब चालों को जानते हुए भी मैंने सब कार्य उसकी लम्बी लम्बी बातों की पोल खोलने के लिए ही किये। काकोरी के मृत्युदण्ड पाये हुओं की दया प्रार्थना न स्वीकार करने का कोई विशेष कारण सरकार के पास नहीं। सरकार ने बंगाल आर्डिनेंस के कैदियों के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, सो काकोरी वालों ने किया। मृत्युदण्ड को रद्द कर देने से देश में किसी प्रकार की शान्ति भंग होने अथवा किसी विप्लव के हो जाने की संभावना न थी। विशेषतया तब जब कि देश भर के सब प्रकार के हिन्दू-मुस्लिम असेम्बली के सदस्यों ने इसकी सिफारिश की थी। षड्यन्त्रकारियों की इतनी बड़ी सिफारिश इससे पहले कभी नहीं हुई। किन्तु सरकार तो अपना पास सेधा रखना चाहती है। उसे अपने बल पर विश्वास है। सर विलियम मेरिस ने ही स्वयं शाहजहांपुर तथा इलाहाबाद के हिन्दु मुसलिम दंगों के अभियुक्तों के मृत्युदंड रद्द किये हैं, जिनको कि इलाहाबाद हाईकोर्ट से मृत्युदण्ड ही देना उचित समझा गया था और उन लोगों पर दिन दहाड़े हत्या करने के सीधे सबूत मौजूद थे। ये सजायें ऐसे समय माफ की गई थीं, जबकि नित्य नये हिन्दू मुसलिम दंगे बढ़ते ही जाते थे। यदि काकोरी के कैदियों को मत्युदंड माफ करके दूसरी सजा देने से दूसरों का उत्साह बढ़ता तो क्या इसी प्रकार मजहबी दंगों के सम्बन्ध में भी नहीं हो सकता था? मगर वहां तो मामला कुछ और ही है, जो अब भारतवासियों के नरम से नरम दल के नेताओं के भी शाही कमीशन के मुकर्रर होने और उसमें एक भी भारतवासी के न चुने जाने, पार्लियामेंट में भारत सचिव लार्ड बर्कनहेड के तथा अन्य मजदूर नेताओं के भाषणों से भली भांति समझ में आया है कि किस प्रकार भारतवर्ष को गुलामी की जंजीरों में जकड़े रहने की चालें चली जा रही हैं।

मैं प्राण त्यागते समय निराश नहीं हूं कि हम लोगों के बलिदान व्यर्थ गए। मेरा तो विश्वास है कि हम लोगों की छिपी हुई आहों का ही यह नतीजा हुआ कि लार्ड बर्कनहेड के दिमाग में परमात्मा ने एक विचार उपस्थित किया कि हिन्दुस्तान के हिन्दू मुसलिम झगड़ों का लाभ उठाओ और भारतवर्ष की जंजीरें और कस दो। गए थे रोजा छुड़ाने, नमाज गले पड़ गई! भारतवर्ष के प्रत्येक विख्यात राजनैतिक दल ने और हिन्दुओं के तो लगभग सभी तथा मुसलमानों के अधिकतर नेताओं ने एक स्वर होकर रायल कमीशन की नियुक्ति तथा उसके सदस्यों के विरुद्ध घोर विरोध व्यक्त किया है, और अगली कांग्रेस (मद्रास) पर सब राजनैतिक दल के नेता तथा हिन्दू मुसलमान एक होने जा रहे हैं। वाइसराय ने जब हम काकोरी के मत्युदण्ड वालों की दया प्रार्थना अस्वीकार की थी, उसी समय मैंने श्रीयुत मोहनलाल जी को पत्र लिखा था कि हिन्दुस्तानी नेताओं को तथा हिन्दू-मुसलमानों को अगली कांग्रेस पर एकत्रित हो हम लोगों की याद मनानी चाहिए। सरकार ने अशफाकउल्ला को रामप्रसाद का दाहिना हाथ करार दिया। अशफाकउल्ला कट्टर मुसलमान होकर पक्के आर्यसमाजी

रामप्रसाद का क्रान्तिकारी दल के सम्बन्ध में यदि दाहिना हाथ बनते, तब क्या नये भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के नाम पर हिन्दू मुसलमान अपने निजी छोटे छोटे फायदों का ख्याल न करके आपस में एक नहीं हो सकते ?

परमात्मा ने मेरी पुकार सुन ली और मेरी इच्छा पूरी होती दिखाई देती है । मैं तो अपना कार्य कर चुका । मैंने मुसलमानों में से एक नवयुवक निकालकर भारतवासियों को दिखला दिया, जो सब परीक्षाओं में पूर्ण उत्तीर्ण हुआ । अब किसी को यह कहने का साहस न होना चाहिए कि मुसलमानों पर विश्वास न करना चाहिए । पहला तजुर्बा था, जो पूरी तौर से कामयाब हुआ । अब देशवासियों से यही प्रार्थना है कि यदि वे हम लोगों के फांसी पर चढ़ने से जरा भी दुखित हुए हों, तो उन्हें यही शिक्षा लेनी चाहिए कि हिन्दू-मुसलमान तथा सब राजनैतिक दल एक होकर कांग्रेस को अपना प्रतिनिधि मानें । जो कांग्रेस तय करे, उसे सब पूरी तौर से मानें और उस पर अमल करें । ऐसा करने के बाद वह दिन बहुत दूर न होगा जबकि अंग्रेजी सरकार को भारतवासियों की मांग के सामने सिर झुकाना पड़े, और यदि ऐसा करेंगे तब तो स्वराज्य कुछ दूर नहीं । क्योंकि फिर तो भारतवासियों को काम करने का पूरा मौका मिल जाएगा । हिन्दू-मुस्लिम एकता ही हम लोगों की यादगार तथा अन्तिम इच्छा है, चाहे वह कितनी कठिनता से क्यों न प्राप्त हो । जो मैं कह रहा हूं वही श्री अशफाकउल्ला खां वारसी का भी मत है, क्योंकि अपील के समय हम दोनों लखनऊ जेल में फांसी की कोठरियों में आमने सामने कई दिन तक रहे थे । आपस में हर तरह की बातें हुई थीं । गिरफ्तारी के बाद से हम लोगों की सजा बढ़ने तक श्री अशफाकउल्ला खां की बड़ी भारी उत्कट इच्छा यही थी कि वह एक बार मुझ से मिल लेते जो परमात्मा ने पूरी की ।

श्री अशफाकउल्ला खां तो अंग्रेजी सरकार से दया प्रार्थना करने पर राजी ही न थे । उसका तो अटल विश्वास यही था कि खुदाबन्द करीम के अलावा किसी दूसरे से प्रार्थना न करनी चाहिए, परन्तु मेरे विशेष आग्रह से ही उन्होंने सरकार से दया प्रार्थना की थी । इसका दोषी मैं ही हूं जो मैंने अपने प्रेम के पवित्र अधिकारों का उपयोग करके श्री अशफाकउल्ला खां को उनके दृढ़ निश्चय से विचलित किया । मैंने एक पत्र द्वारा अपनी भूल स्वीकार करते हुए भ्रातृ-द्वितीया के अवसर पर गोरखपुर जेल से श्री अशफाक को पत्र लिखकर क्षमा प्रार्थना की थी । परमात्मा जाने कि वह पत्र उनके हाथों तक पहुंचा भी था या नहीं । खैर ! परमात्मा की ऐसी इच्छा थी कि हम लोगों को फांसी दी जाए, भारतवासियों के जले हुए दिलों पर नमक पड़े, वे बिलबिला उठें और हमारी आत्माएं उनके कार्य को देखकर सुखी हों । जब हम नवीन शरीर धारण करके देश सेवा में योग देने को

उद्यत हों, उस समय तक भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति पूर्णतया सुधरी हुई हो। जनसाधारण का अधिक भाग सुरक्षित हो जाए। ग्रामीण लोग भी अपने कर्त्तव्य समझने लग जाएं।

प्रिवी कौंसिल में अपील भिजवाकर मैंने जो व्यर्थ का अपव्यय करवाया, उसका भी एक विशेष अर्थ था। सब अपीलों का तात्पर्य यह था कि मृत्युदंड उपयुक्त नहीं। क्योंकि न जाने किसकी गोली से आदमी मारा गया। अगर डकैती डालने की जिम्मेदारी के ख्याल से मृत्युदण्ड दिया गया तो चीफ कोर्ट के फैसले के अनुसार भी मैं ही डकैतियों का जिम्मेदार तथा नेता था, और प्रान्त का नेता भी मैं ही था। अतःएव मृत्युदण्ड तो अकेला मुझे ही मिलना चाहिए था। अन्य तीन को फांसी नहीं देनी चाहिए थी। इसके अतिरिक्त दूसरी सजाएं सब स्वीकार होती। पर ऐसा क्यों होने लगा ? मैं विलायती न्यायालय की भी परीक्षा करके स्वदेशवासियों के लिए उदाहरण छोड़ना चाहता था कि यदि कोई राजनैतिक अभियोग चले तो वे कभी भूलकर के भी किसी अंग्रेजी अदालत का विश्वास न करें। तबीयत आये तो जोरदार बयान दें। अन्यथा मेरी तो राय है कि अंग्रेजी अदालत के सामने न तो कभी कोई बयान दें और न कोई सफाई पेश करें, काकोरी षड्यन्त्र के अभियोग से शिक्षा प्राप्त कर लें। इस अभियोग में सब प्रकार के उदाहरण मौजूद हैं। प्रिवी कौंसिल में अपील दाखिल कराने का एक विशेष अर्थ यह भी था कि मैं कुछ समय तक फांसी की तारीख टलवा कर यह परीक्षा करना चाहता था कि नवयुवकों में कितना दम है और देशवासी कितनी सहायता दे सकते हैं। इससे मुझे बड़ी निराशाजनक सफलता हुई। अन्त में मैंने निश्चय किया था कि यदि हो सके तो जेल से निकल भागूं। पैसा हो जाने से सरकार को अन्य तीन फांसी वालों की सजा माफ कर देनी पड़ेगी और यदि न करते तो मैं करा लेता। मैंने जेल से भागने के अनेकों प्रयत्न किये, किन्तु बाहर से कोई सहायता न मिल सकी। यहीं तो हृदय को आघात लगता है कि जिस देश में मैंने इतना बड़ा क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा षड्यन्त्रकारी दल खड़ा किया था, वहां से मुझे प्राण-रक्षा के लिए एक रिवाल्वर तक न मिल सका ! एक नवयुवक भी सहायता को न आ सका ! अन्त में फांसी पा रहा हूं। फांसी पाने का मुझे कोई शौक नहीं, क्योंकि मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि परमात्मा को यही मंजूर था। मगर मैं नवयुवकों से फिर भी नम्र निवेदन करता हूं कि जब तक भारतवासियों की अधिक संख्या सुशिक्षित न हो जाए, जब तक उन्हें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान न हो जाए, तब तक वे भूलकर भी किसी प्रकार के क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों में भाग न लें। यदि देश सेवा की इच्छा हो तो खुले आन्दोलनों द्वारा यथाशक्ति कार्य करें, अन्यथा उनका बलिदान उपयोगी न होगा। दूसरे प्रकार से इससे अधिक देश सेवा हो सकती है, जो ज्यादा उपयोगी सिद्ध होगी। परिस्थिति अनुकूल न होने से ऐसे आन्दोलनों में परिश्रम प्रायः व्यर्थ जाता है। जिसकी भलाई के लिए करो, वही बुरे बुरे नाम धरते हैं और अन्त में मन ही मन कुढ़ कर प्राण त्यागने पड़ते हैं।

देशवासियों से यही अन्तिम विनय है कि जो कुछ करें, सब मिलकर करें और सब देश की भलाई के लिए करें। इसी से सबका भला होगा।

मरते 'बिस्मिल' 'रोशन' 'लहरी' 'अशफाक' अत्याचार से।

होंगे पैदा सैंकड़ों इनके रुधिर की धार से॥

- रामप्रसाद 'बिस्मिल'

(End of Autobiography)

रामप्रसाद बिस्मिल द्वारा लिखित मशहूर तराना

No other song, with the obvious exception of Bankim Chandra's Vande Matram, induced so many young men to lay down their lives for the country than Ram Prasad Bismil's “Sarfaroshi ki Tamanna”. The Text of this long poem is reproduced below.

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाज़ुए कातिल में है

वक्त आने दे बता देंगे तुझे ए आसमान,
हम अभी से क्या बतायें क्या हमारे दिल में है

करता नहीं क्यूँ दूसरा कुछ बातचीत,
देखता हूँ मैं जिसे वो चुप तेरी महफ़िल में है

रहबरे राहे मुहब्बत, रह न जाना राह में
लज्जते-सेहरा न वर्दी दूरिए-मंजिल में है

अब न अगले वलवले हैं और न अरमानों की भीड़
एक मिट जाने की हसरत अब दिले-बिस्मिल में है।

ए शहीद-ए-मुल्क-ओ-मिल्लत मैं तेरे ऊपर निसार,
अब तेरी हिम्मत का चरचा गैर की महफ़िल में है
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

खैंच कर लायी है सब को कत्ल होने की उम्मीद,

आशिकों का आज जमघट कूचा-ए-कातिल में है
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

है लिये हथियार दुशमन ताक में बैठा उधर,
और हम तैय्यार हैं सीना लिये अपना इधर,
खून से खेलेंगे होली गर वतन मुश्किल में है,
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

हाथ जिन में हो जुनून कटते नही तलवार से,
सर जो उठ जाते हैं वो झुकते नहीं ललकार से,
और भड़केगा जो शोला-सा हमारे दिल में है,
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

हम तो घर से निकले ही थे बाँधकर सर पे कफ़न,
जान हथेली पर लिये लो बढ चले हैं ये कदम.
जिन्दगी तो अपनी मेहमान मौत की महफ़िल में है,
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

यूँ खड़ा मौकतल में कातिल कह रहा है बार-बार,
क्या तमन्ना-ए-शहादत भी किसी के दिल में है
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

दिल में तूफ़ानों की टोली और नसों में इन्कलाब,
होश दुश्मन के उड़ा देंगे हमें कोई रोको ना आज
दूर रह पाये जो हमसे दम कहाँ मंज़िल में है
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

वो जिस्म भी क्या जिस्म है जिसमें ना हो खून-ए-जुनून
तूफ़ानों से क्या लड़े जो कश्ती-ए-साहिल में है,
सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाज़ुए कातिल में है
(बिस्मिल आजिमाबादी)

मन की लहर

- मुखम्मस
- बिस्मिल की उर्दू गजल
- उर्दू गजल
- बिस्मिल की अन्तिम रचना
- जिन्दगी का राज

प्रतिनिधि रचनाएँ

- कुछ अशआर / राम प्रसाद बिस्मिल
- ऐ मातृभूमि! तेरी जय हो / राम प्रसाद बिस्मिल
- तराना-ए-बिस्मिल / राम प्रसाद बिस्मिल
- न चाहूं मान / राम प्रसाद बिस्मिल
- मातृ-वन्दना / राम प्रसाद बिस्मिल
- मुखम्मस / राम प्रसाद बिस्मिल
- बिस्मिल की उर्दू गजल / राम प्रसाद बिस्मिल
- बिस्मिल की अन्तिम रचना / राम प्रसाद बिस्मिल
- विद्यार्थी बिस्मिल की भावना / राम प्रसाद बिस्मिल
- सर फ़रोशी की तमन्ना / राम प्रसाद बिस्मिल
- हे मातृभूमि / राम प्रसाद बिस्मिल
- गुलामी मिटा दो / राम प्रसाद बिस्मिल
- आज़ादी / राम प्रसाद बिस्मिल
- हैफ़ जिस पे कि हम तैयार थे मर जाने को / राम प्रसाद बिस्मिल
- हमारी ख़्वाहिश / राम प्रसाद बिस्मिल
- एक अन्य गीत / राम प्रसाद बिस्मिल
- फूल / राम प्रसाद बिस्मिल
- जब प्राण तन से निकलें / राम प्रसाद बिस्मिल
- हक़ीक़त के वचन / राम प्रसाद बिस्मिल
- प्रार्थना / राम प्रसाद बिस्मिल
- फाँसी की कल्पना / राम प्रसाद बिस्मिल
- भजन / राम प्रसाद बिस्मिल
- भारत जननि / राम प्रसाद बिस्मिल

(बिस्मिल के मशहूर उर्दू मुखम्मस) का काव्यानुवाद
जज्वये-शहीद

हम भी आराम उठा सकते थे घर पर रह कर,
हमको भी पाला था माँ-बाप ने दुःख सह-सह कर ,
वक्ते-रुख्सत उन्हें इतना भी न आये कह कर,
गोद में अश्क जो टपकें कभी रुख से बह कर ,
तिफ्ल उनको ही समझ लेना जी बहलाने को !

अपनी किस्मत में अजल ही से सितम रक्खा था,
रंज रक्खा था मेहन रक्खी थी गम रक्खा था ,
किसको परवाह थी और किसमें ये दम रक्खा था,
हमने जब वादी-ए-ग़ुरबत में क़दम रक्खा था ,
दूर तक याद-ए-वतन आई थी समझाने को !

अपना कुछ गम नहीं लेकिन ए ख़याल आता है,
मादरे-हिन्द पे कब तक ये जवाल आता है ,
कौमी-आज़ादी का कब हिन्द पे साल आता है,
कौम अपनी पे तो रह-रह के मलाल आता है ,
मुन्तजिर रहते हैं हम खाक में मिल जाने को !

नौजवानों! जो तबीयत में तुम्हारी खटके,
याद कर लेना कभी हमको भी भूले भटके ,
आपके अज्वे-वदन होवें जुदा कट-कट के,
और सद-चाक हो माता का कलेजा फटके ,

पर न माथे पे शिकन आये कसम खाने को !

एक परवाने का बहता है लहू नस-नस में,
अब तो खा बैठे हैं चित्तौड़ के गढ़ की कसमें ,
सरफ़रोशी की अदा होती हैं यूँ ही रस्में,
भाई खंजर से गले मिलते हैं सब आपस में ,
बहने तैयार चिताओं से लिपट जाने को !

सर फ़िदा करते हैं कुरबान जिगर करते हैं,
पास जो कुछ है वो माता की नजर करते हैं ,
खाना वीरान कहाँ देखिये घर करते हैं!
खुश रहो अहले-वतन! हम तो सफ़र करते हैं ,
जा के आबाद करेंगे किसी वीराने को !

नौजवानो ! यही मौका है उठो खुल खेलो,
खिदमते-कौम में जो आये वला सब झेलो ,
देश के वास्ते सब अपनी जबानी दे दो ,
फिर मिलेंगी न ये माता की दुआएँ ले लो ,
देखें कौन आता है ये फ़र्ज़ बजा लाने को ?

जिन्दगी का राज

चर्चा अपने क़त्ल का अब दुश्मनों के दिल में है,

देखना है ये तमाशा कौन सी मंजिल में है ?

कौम पर कुर्बान होना सीख लो ऐ हिन्दियो !

ज़िन्दगी का राज़े-मुज्मिर खंजरे-क़ातिल में है !

साहिले-मक़सूद पर ले चल खुदारा नाखुदा !

आज हिन्दुस्तान की कश्ती बड़ी मुश्किल में है !

दूर हो अब हिन्द से तारीकि-ए-बुग्जो-हसद ,

अब यही हसरत यही अरमाँ हमारे दिल में है !

बामे-रफअत पर चढ़ा दो देश पर होकर फना ,

'बिस्मिल' अब इतनी हविश बाकी हमारे दिल में है !

सर फ़िदा करते हैं कुरबान जिगर करते हैं,

पास जो कुछ है वो माता की नजर करते हैं ,

खाना वीरान कहाँ देखिये घर करते हैं!

खुश रहो अहले-वतन! हम तो सफ़र करते हैं ,

जा के आबाद करेंगे किसी वीराने को !

नौजवानो ! यही मौका है उठो खुल खेलो,

खिदमते-कौम में जो आये वला सब झेलो ,

देश के वास्ते सब अपनी जबानी दे दो ,

फिर मिलेंगी न ये माता की दुआएँ ले लो ,

देखें कौन आता है ये फ़र्ज़ बजा लाने को ?

बिस्मिल की अन्तिम रचना

मिट गया जब मिटने वाला फिर सलाम आया तो क्या !

दिल की बर्वादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या !

मिट गईं जब सब उम्मीदें मिट गए जब सब ख़याल ,

उस घड़ी गर नामावर लेकर पयाम आया तो क्या !

ऐ दिले-नादान मिट जा तू भी कू-ए-यार में ,

फिर मेरी नाकामियों के बाद काम आया तो क्या !

काश! अपनी जिंदगी में हम वो मंजर देखते ,

यूँ सरे-तुर्बत कोई महशर-खिराम आया तो क्या !

आख़िरी शब दीद के काबिल थी 'बिस्मिल' की तड़प ,

सुब्ह-दम कोई अगर बाला-ए-बाम आया तो क्या !

जिन्दगी का राज

कुछ अशआर / राम प्रसाद बिस्मिल

इलाही ख़ैर वो हरदम नई बेदाद करते हैँ
हमेँ तोहमत लगाते हैँ जो हम फरियाद करते हैँ

ये कह कहकर बसर की उम्र हमने क़ैदे उल्फत मेँ
वो अब आज़ाद करते हैँ वो अब आज़ाद करते हैँ

सितम ऐसा नहीँ देखा जफ़ा ऐसी नहीँ देखी
वो चुप रहने को कहते हैँ जो हम फरियाद करते हैँ

ऐ मातृभूमि! तेरी जय हो / राम प्रसाद बिस्मिल

ऐ मातृभूमि तेरी जय हो, सदा विजय हो ।
प्रत्येक भक्त तेरा, सुख-शांति-कान्तिमय हो ।।

अज्ञान की निशा में, दुख से भरी दिशा में,
संसार के हृदय में तेरी प्रभा उदय हो ।

तेरा प्रकोप सारे जग का महाप्रलय हो ।।
तेरी प्रसन्नता ही आनन्द का विषय हो ।।

वह भक्ति दे कि 'बिस्मिल' सुख में तुझे न भूले,
वह शक्ति दे कि दुःख में कायर न यह हृदय हो ।।

तराना-ए-बिस्मिल / राम प्रसाद बिस्मिल

बला से हमको लटकाए अगर सरकार फांसी से,
लटकते आए अक्सर पैकरे-ईसार फांसी से।

लबे-दम भी न खोली ज़ालिमों ने हथकड़ी मेरी,
तमन्ना थी कि करता मैं लिपटकर प्यार फांसी से।

खुली है मुझको लेने के लिए आग़ोशे आज़ादी,
ख़ुशी है, हो गया महबूब का दीदार फांसी से।

कभी ओ बेख़बर तहरीके़-आज़ादी भी रुकती है?
बढ़ा करती है उसकी तेज़ी-ए-रफ़्तार फांसी से।

यहां तक सरफ़रोशाने-वतन बढ़ जाएंगे क़ातिल,
कि लटकाने पड़ेंगे नित मुझे दो-चार फांसी से।

न चाहूं मान / राम प्रसाद बिस्मिल

न चाहूँ मान दुनिया में, न चाहूँ स्वर्ग को जाना
मुझे वर दे यही माता रहूँ भारत पे दीवाना

करुँ मैं कौम की सेवा पड़े चाहे करोड़ों दुख
अगर फ़िर जन्म लूँ आकर तो भारत में ही हो आना

लगा रहे प्रेम हिन्दी में, पढ़ूँ हिन्दी लिखुँ हिन्दी
चलन हिन्दी चलूँ, हिन्दी पहरना, ओढना खाना

भवन में रोशनी मेरे रहे हिन्दी चिरागों की
स्वदेशी ही रहे बाजा, बजाना, राग का गाना

लगें इस देश के ही अर्थ मेरे धर्म, विद्या, धन
करुँ मैं प्राण तक अर्पण यही प्रण सत्य है ठाना

नहीं कुछ गैर-मुमकिन है जो चाहो दिल से "बिस्मिल" तुम
उठा लो देश हाथों पर न समझो अपना बेगाना

मातृ-वन्दना / राम प्रसाद बिस्मिल

हे मातृभूमि ! तेरे चरणों में शिर नवाऊँ।
मैं भक्ति भेंट अपनी, तेरी शरण में लाऊँ ।।

माथे पे तू हो चन्दन, छाती पे तू हो माला ;
जिह्वा[1] पे गीत तू हो, तेरा ही नाम गाऊँ ।।

जिससे सपूत उपजें, श्रीराम-कृष्ण जैसे ;
उस धूल को मैं तेरी निज शीश पे चढ़ाऊँ ।।

माई समुद्र[2] जिसकी पदरज को नित्य धोकर ;
करता प्रणाम तुझको, मैं वे चरण दबाऊँ ।।

सेवा में तेरी माता ! मैं भेदभाव तजकर ;
वह पुण्य नाम तेरा, प्रतिदिन सुनूँ सुनाऊँ ।।

तेरे ही काम आऊँ, तेरा ही मन्त्र गाऊँ।
मन और देह तुझ पर बलिदान मैं चढ़ाऊँ ।।

विद्यार्थी बिस्मिल की भावना / राम प्रसाद बिस्मिल

देश की ख़ातिर मेरी दुनिया में यह ताबीर[1] हो
हाथ में हो हथकड़ी, पैरों पड़ी ज़ंजीर हो

सर कटे, फाँसी मिले, या कोई भी तद्बीर[2] हो
पेट में ख़ंजर दुधारा या जिगर में तीर हो

आँख ख़ातिर तीर हो, मिलती गले शमशीर हो
मौत की रक्खी हुई आगे मेरे तस्वीर हो

मरके मेरी जान पर ज़ह्मत[3] बिला ताख़ीर[4] हो
और गर्दन पर धरी जल्लाद ने शमशीर हो

ख़ासकर मेरे लिए दोज़ख़ नया तामीर[5] हो
अलग़रज़[6] जो कुछ हो मुम्किन वो मेरी तहक़ीर[7] हो

हो भयानक से भयानक भी मेरा आख़ीर हो
देश की सेवा ही लेकिन इक मेरी तक़्सीर[8] हो

इससे बढ़कर और भी दुनिया में कुछ ताज़ीर[9] हो
मंज़ूर हो, मंज़ूर हो मंज़ूर हो, मंज़ूर हो

मैं कहूँगा 'राम' अपने देश का शैदा हूँ मैं
फिर करूँगा काम दुनिया में अगर पैदा हूँ मैं

हे मातृभूमि / राम प्रसाद बिस्मिल

हे मातृभूमि ! तेरे चरणों में शिर नवाऊँ ।
मैं भक्ति भेंट अपनी, तेरी शरण में लाऊँ ।।

माथे पे तू हो चंदन, छाती पे तू हो माला ;
जिह्वा पे गीत तू हो मेरा, तेरा ही नाम गाऊँ ।।

जिससे सपूत उपजें, श्री राम-कृष्ण जैसे;
उस धूल को मैं तेरी निज शीश पे चढ़ाऊँ ।।

माई समुद्र जिसकी पद रज को नित्य धोकर;
करता प्रणाम तुझको, मैं वे चरण दबाऊँ ।।

सेवा में तेरी माता ! मैं भेदभाव तजकर;
वह पुण्य नाम तेरा, प्रतिदिन सुनूँ सुनाऊँ ।।

तेरे ही काम आऊँ, तेरा ही मंत्र गाऊँ।
मन और देह तुझ पर बलिदान मैं जाऊँ ।।

गुलामी मिटा दो / राम प्रसाद बिस्मिल

दुनिया से गुलामी का मैं नाम मिटा दूंगा,
एक बार ज़माने को आज़ाद बना दूंगा।

बेचारे ग़रीबों से नफ़रत है जिन्हें, एक दिन,
मैं उनकी अमरी को मिट्टी में मिला दूंगा।

यह फ़ज़ले-इलाही से आया है ज़माना वह,
दुनिया की दग़ाबाज़ी दुनिया से उठा दूंगा।

ऐ प्यारे ग़रीबो! घबराओ नहीं दिल मंे,
हक़ तुमको तुम्हारे, मैं दो दिन में दिला दूंगा।

बंदे हैं ख़ुदा के सब, हम सब ही बराबर हैं,
ज़र और मुफ़लिसी का झगड़ा ही मिटा दूंगा।

जो लोग ग़रीबों पर करते हैं सितम नाहक़,
गर दम है मेरा क़ायम, गिन-गिन के सज़ा दूंगा।

हिम्मत को ज़रा बांधो, डरते हो ग़रीबों क्यों?
शैतानी क़िले में अब मैं आग लगा दूंगा।

ऐ 'सरयू' यक़ीं रखना, है मेरा सुख़न सच्चा,
कहता हूं, जुबां से जो, अब करके दिखा दूंगा।

आज़ादी / राम प्रसाद बिस्मिल

इलाही ख़ैर! वो हरदम नई बेदाद करते हैं,
हमें तोहमत लगाते हैं, जो हम फ़रियाद करते हैं।

कभी आज़ाद करते हैं, कभी बेदाद करते हैं।
मगर इस पर भी हम सौ जी से उनको याद करते हैं।

असीराने-क़फ़स से काश, यह सैयाद कह देता,
रहो आज़ाद होकर, हम तुम्हें आज़ाद करते हैं।

रहा करता है अहले-ग़म को क्या-क्या इंतज़ार इसका,
कि देखें वो दिले-नाशाद को कब शाद करते हैं।

यह कह-कहकर बसर की, उम्र हमने कै़दे-उल्फ़त मंे,
वो अब आज़ाद करते हैं, वो अब आज़ाद करते हैं।

सितम ऐसा नहीं देखा, जफ़ा ऐसी नहीं देखी,
वो चुप रहने को कहते हैं, जो हम फ़रियाद करते हैं।

यह बात अच्छी नहीं होती, यह बात अच्छी नहीं करते,
हमें बेकस समझकर आप क्यों बरबाद करते हैं?

कोई बिस्मिल बनाता है, जो मक़तल में हमें 'बिस्मिल',
तो हम डरकर दबी आवाज़ से फ़रियाद करते हैं।

हैफ़ जिस पे कि हम तैयार थे मर जाने को / राम प्रसाद बिस्मिल

हैफ़ जिस पे कि हम तैयार थे मर जाने को,
यकायक हमसे छुड़ाया उसी काशाने को।
आसमां क्या यहां बाक़ी था ग़ज़ब ढाने को?
क्या कोई और बहाना न था तरसाने को?

फिर न गुलशन में हमें लाएगा सैयाद कभी,
क्यों सुनेगा तू हमारी कोई फरियाद कभी,
याद आएगा किसे ये दिले-नाशाद कभी,
हम कि इस बाग़ में थे, क़ैद से आज़ाद कभी,
अब तो काहे को मिलेगी ये हवा खाने को!

दिल फ़िदा करते हैं, कुर्बान जिगर करते हैं,
पास जो कुछ है, वो माता की नज़र करते हैं,
ख़ाना वीरान कहां, देखिए घर करते हैं,
अब रहा अहले-वतन, हम तो सफ़र करते हैं,
जा के आबाद करेंगे किसी विराने को!

देखिए कब यह असीराने मुसीबत छूटें,
मादरे-हिंद के अब भाग खुलें या फूटें,
देश-सेवक सभी अब जेल में मूंजे कूटें,
आप यहां ऐश से दिन-रात बहारें लूटें,
क्यों न तरजीह दें, इस जीने से मर जाने को!

कोई माता की उमीदों पे न डाले पानी,
ज़िंदगी भर को हमें भेज दे काले पानी,
मुंह में जल्लाद, हुए जाते हैं छाले पानी,

आबे-खंजर को पिला करके दुआ ले पानी,
भर न क्यों पाए हम, इस उम्र के पैमाने को!

हम भी आराम उठा सकते थे घर पर रहकर,
हमको भी पाला था मां-बाप ने दुख सह-सहकर,
वक़्ते-रुख़सत उन्हें इतना ही न आए कहकर,
गोद में आंसू कभी टपके जो रुख़ से बहकर,
तिफ़्ल उनको ही समझ लेना जी बहलाने को!

देश-सेवा ही का बहता है लहू नस-नस में,
अब तो खा बैठे हैं चित्तौड़ के गढ़ की क़समें,
सरफ़रोशी की, अदा होती हैं यो ही रस्में,
भाई ख़ंजर से गले मिलते हैं सब आपस में,
बहने तैयार चिताओं में हैं जल जाने को!

नौजवानो, जो तबीयत में तुम्हारी खटके,
याद कर लेना कभी हमको भी भूले-भटके,
आपके अजबे-बदन होवें जुदा कट-कट के,
और सद चाक हो, माता का कलेजा फट के,
पर न माथे पे शिकन आए, क़सम खाने को!

अपनी क़िस्मत में अज़ल ही से सितम रक्खा था,
रंज रक्खा था, मिहन रक्खा था, ग़म रक्खा था,
किसको परवाह थी, और किसमें ये दम रक्खा था,
हमने जब वादी-ए-गुरबत में क़दम रखा था,
दूर तक यादे-वतन आई थी समझाने को!

अपना कुछ ग़म नहीं लेकिन ये ख़याल आता है,
मादरे हिंद पे कब से ये ज़वाल आता है,
देशी आज़ादी का कब हिंद में साल आता है,
क़ौम अपनी पे तो रह-रह के मलाल आता है,
मुंतज़िर रहते हैं हम ख़ाक में मिल जाने को!

मैक़दा किसका है, ये जामो-सबू किसका है?
वार किसका है मेरी जां, यह गुलू किसका है?
जो बहे क़ौम की ख़ातिर वो लहू किसका है?
आसमां साफ़ बता दे, तू अदू किसका है?
क्यों नये रंग बदलता है ये तड़पाने को!

दर्दमंदों से मुसीबत की हलावत पूछो,
मरने वालों से ज़रा लुत्फ़े-शहादत पूछो,
चश्मे-मुश्ताक़ से कुछ दीद की हसरत पूछो,
जां निसारों से ज़रा उनकी हक़ीक़त पूछो,
सोज़ कहते हैं किसे, पूछो तो परवाने को!

बात सच है कि इस बात की पीछे ठानें,
देश के वास्ते कुरबान करें सब जानें,
लाख समझाए कोई, एक न उसकी मानें,
कहते हैं, ख़ून से मत अपना गिरेबां सानें,
नासेह, आग लगे तेरे इस समझाने को!

न मयस्सर हुआ राहत में कभी मेल हमें,
जान पर खेल के भाया न कोई खेल हमें,
एक दिन को भी न मंजूर हुई बेल हमें,

याद आएगी अलीपुर की बहुत जेल हमें,
लोग तो भूल ही जाएंगे इस अफ़साने को!

अब तो हम डाल चुके अपने गले में झोली,
एक होती है फ़कीरों की हमेशा बोली,
ख़ून से फाग रचाएगी हमारी टोली,
जब से बंगाल में खेले हैं कन्हैया होली,
कोई उस दिन से नहीं पूछता बरसाने को!

नौजवानो, यही मौक़ा है, उठो, खुल खेलो,
ख़िदमते क़ौम में जो आए बला, तुम झेलो,
देश के सदके में माता को जवानी दे दो,
फिर मिलेंगी न ये माता की दुआएं, ले लो,
देखें कौन आता है, इर्शाद बजा लाने को!

रचनाकाल: सन 1929

हमारी ख़्वाहिश / राम प्रसाद बिस्मिल

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है ज़ोर कितना बाजू-ए-क़ातिल में है।

रहबरे राहे मुहब्बत, रह न जाना राह में,
लज़्ज़ते सहरा नवर्दी दूरी-ए-मंज़िल में है।

वक़्त आने दे, बता देंगे तुझे, ऐ आसमां!
हम अभी-से क्या बताएं, क्या हमारे दिल में है।

अब न अगले वलवले हैं और न अरमानों की भीड़,
एक मिट जाने की हरसरत अब दिले 'बिस्मिल' में है।

आज मक़तल में ये क़ातिल कह रहा है बार-बार,
क्या तमन्ना-ए-शहादत भी किसी के दिल में है!

ऐ शहीदे-मुल्को-मिल्लत, तेरे जज़्बों के निसार,
तेरी कुर्बानी का चर्चा ग़ैर की महफ़िल में है।

रचनाकाल: सन 1929

एक अन्य गीत / राम प्रसाद बिस्मिल

बला से हमको लटकाए अगर सरकार फांसी से,
लटकते आए अक्सर पैकरे-ईसार फांसी से।

लबे-दम भी न खोली ज़ालिमों ने हथकड़ी मेरी,
तमन्ना थी कि करता मैं लिपटकर प्यार फांसी से।

खुली है मुझको लेने के लिए आग़ोशे आज़ादी,
ख़ुशी है, हो गया महबूब का दीदार फांसी से।

कभी ओ बेख़बर तहरीके़-आज़ादी भी रुकती है?
बढ़ा करती है उसकी तेज़ी-ए-रफ़्तार फांसी से।

यहां तक सरफ़रोशाने-वतन बढ़ जाएंगे क़ातिल,
कि लटकाने पड़ेंगे नित मुझे दो-चार फांसी से।

फूल / राम प्रसाद बिस्मिल

फूल ! तू व्यर्थ रह्यो क्यों फूल ?
फूल ! तू व्यर्थ रह्यो क्यों फूल ?

हो मदान्ध निज निर्माता को गयो हृदय से भूल
रूप-रंग लखि करें चाह सब, कोउ लखे नहिं शूल
अन्त-समय पद-दलित होयगी निश्चय तेरी धूल
चलत समीर सुहावन जब लौं समय रहे अनुकूल ।

फूल ! तू व्यर्थ रह्यो क्यों फूल ?
फूल ! तू व्यर्थ रह्यो क्यों फूल ?

यौवन मद-मत्सर में काट्यो, पर-हित कियो न भूल
अम्ब कहाँ से मिल सकता है यदि बो दिए बबूल
नश्वर देह मिले माटी में होकर नष्ट समूल
प्यारे ! घटत आयुक्षण पल-पल जय हरि मंगल मूल

फूल ! तू व्यर्थ रह्यो क्यों फूल ?
फूल ! तू व्यर्थ रह्यो क्यों फूल ?

Hindustan Republcan Association

(The Constitution of H.R.A.)

(1924)

by Ram Prasad Bismil

Name

The name of the Association shall be the Hindustan Republican Association.[2]

Objects

The object of the association shall be to establish a Federated Republic of the United States of India by an organized and armed Revolution.

The final form of the constitution of the Republic shall be framed and declared by the representatives of the people at the time when they will be in a position to enforce their decisions.

The basic principle of the Republic shall be Universal Suffrage and the abolition of all systems which make any kind of exploitation of man by man possible.

Constitution

Governing Body

The Governing Body of the Association shall be the Central Council composed of the representatives of every province of India. All decisions of the Central Council shall be vested with absolute powers.

The principle function of the Central Council shall be to supervise, adjust and coordinate the activities in the different provinces of which it shall have full knowledge.

The Central Council shall be in direct charge of the work to be carried on in countries outside India.

Provincial Organisation

There shall be a committee, ordinarily of five men representing the five (5) different departments of the Association in every province, which shall regulate all the activities of Association in the province.[3]

All decisions of the committee shall be arrived at by unanimous consent.

Departments

Every provincial organisation shall have the following departments:

1. Propaganda,
2. Collection of men,
3. Collection of funds and terrorism,
4. Collection and storage of arms and ammunitions,
5. Foreign connection.

1. Propaganda shall be carried on:

(a) by an open and a secret press,

(b) through private conversation,

(c) through public platforms,

(d) through a system of organized Kathas, and

(e) though magic lantern slides.

2. Collection of men shall be done by organisers in charge of different districts.

3. Funds shall be collected generally by means of voluntary subscriptions and occasionally by contributions exacted by force. In extreme cases of repressions by agent or agents of a foreign government, it shall be the duty of the association to retaliate in whatever form it shall consider suitable.

4. Every effort shall be made to arm every member of the association; but all such arms shall be stored at different centres and be used according to the directions of the provincial committee only.

No arms shall be removed from any place in the district or used without knowledge and the permission of the district organiser or the officer-in-charger of this department.

5. Foreign Connection. This department shall carry on its work under the direct orders from the CC.

District Organiser - His Duties

The district organiser shall be in sole charge of the members of his district.

He shall try to start branches of this association in every part of his district. In order to have efficient recruitment he should keep himself in touch with the different public bodies and institutions in his district.

The district organisers shall be subordinate in every way to the provincial committee who shall supervise and direct all the activities.

The district organiser must see that the member are divided into separate groups and the different groups do not know each other.

So far as possible the district organisers of any province must not know the activities of each other and, if possible, they must also not know each other by person or by name. No district organiser shall leave his station without previously informing his superior.

Qualifications of a District Organiser

1. He must have the tact and the ability to guide and handle men of different temperaments.
2. He must have the capacity to grasp political, social and economical problems of the present day with special reference to his motherland.
3. He must be able to grasp the spirit of the history of India, with special reference to the particular civilisation which India has evolved.
4. He must have faith in the mission and the destiny of a free India, which is to bring harmony in the different spheres of human activities, both spiritual and material.
5. He must be courageous and self-sacrificing without which all his brilliant qualities will have no real value.

Provincial Council and Central Council

PC and CC members must see that every member of this association gets full scope and ample opportunity to develop and use his individual abilities, without which the association will tend to disintegrate.

Programme

All the activities of the association shall be divided into two parts: public and private.[4]

Public

1. To start association in the forms of clubs, libraries, seva samitis and the like.
2. To start labour and peasant organisations. Suitable men must be engaged on behalf of the association to organize an control the labourers in the different factories, the railways and in the coalfields, and instil into their minds that they are not for the revolution but that the revolution is for them. Similarly the Kisans must also be organized
3. To start weekly paper in every province to propagate the idea of an independent Indian Republic.
4. To publish booklets and pamphlets with a view to enlighten public as to the course of events and the current of thoughts as prevalent in the countries outside India.
5. To utilise and influence the Congress and other public activities as far as possible.

Private

(a) To establish a secret press and through it to publish such literature which cannot easily be published openly.

(b) To circulate such literature.

(c) To establish branches of this association in every part of the country, district by district.

(d) To collect funds in as many ways as possible.

(e) To send suitable men to foreign countries where they may get military or scientific training so that they may become military or scientific experts to take charge of armies and ammunition factories at the time of open rebellion.

(f) To import arms and ammunitions and also to manufacture them, as far as possible, in the country.

(g) To remain in close touch and to cooperate with the Indian revolutionaries outside India.

(h) To get the members of the association enlisted into the present army.

(i) To enlist the sympathy of the public to our cause by occasional retaliatory measures and propaganda and thus create a band of sympathisers.

Membership

All members shall be recruited by organisers in charge of different districts in every province. Every member must be ready to devote his whole time for the association and to risk his life if necessary.[5]

He must obey the commands of the district organiser implicitly.

He should develop his own initiative and remember that the success of the association depends much on the resourcefulness, the initiative and the sense of duty of its individual members.

He must behave in a manner that may not prejudice the cause for which his association stands or may not do any harm directly or indirectly to his organisation.

No member of this association shall belong to any other organisation without the consent of the district organiser.

No member shall leave his station without informing the district organiser about it. Every member must try to avoid being suspected of evolutionary connections by the police or public.

Every member must remember that his individual behaviour and mistakes might lead to the ruin of the whole organisation.

No member shall conceal anything from the district organiser as far as his public life is concerned.

Members who will betray shall be punished either with expulsion or death. The authority of punishment shall rest entirely with the "PC".